हास्यरसधारा—२ Read & Laugh

नोक-झोंक

A Psychological Study in tender feelings.

—: लेखक :—

गंगा-जमुनी, उलटफेर, मरदानी औरत, दुमदार आदमी

इत्यादिके रचयिता तथा

मार मारकर हकीम, नाकमें दम

इत्यादिके अनुवादक, हास्यरसके प्रधान लेखक :—

श्रीयुत जी० पी० श्रीवास्तव

बी. ए. एल. एल. बी.

—: प्रकाशक :—

हिन्दी पुस्तक एजेन्सी

२०३, हरिसन रोड, कलकत्ता

चतुर्थ संस्करण] १९३१

प्रकाशक
बैजनाथ केडिया
प्रोप्राइटर—
हिन्दी पुस्तक एजेन्सी
२०३, हरिसन रोड, कलकत्ता

मुद्रक—
किशोरीलाल केडिया
"वणिक् प्रेस"
१, सरकार लेन,
कलकत्ता।

संरक्षिका

महोदया

एक स्वाधीन राज्यकी रानी

के

कर कमलोंमें

सादर

समर्पित

प्रस्तावना

साहित्यके नव रसोंमें हास्यरस भी एक प्रधान रस है। हिन्दी-साहित्यमें शृङ्गाररसके ग्रन्थोंका तो मानो साम्राज्य ही है, किन्तु हास्यरसकी कोई प्रधान पुस्तक हमारे प्राचीन साहित्यमें नहीं। भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र आधुनिक हिन्दीके जन्मदाता कहे जाते हैं। उन्हींके समयमें हिन्दीको वर्तमान स्वरूप दिया गया और उन्होंने ही स्वयं लिख और अपने मित्रोंसे लिखाकर नये ढङ्गका साहित्य तैयार कराया, यह बात हिन्दी-साहित्यके प्रत्येक प्रेमी पाठकपर प्रकट है। भारतेन्दुके ही समयमें उधर बङ्गभाषाका भी अभिनव शृङ्गार हो रहा था और बङ्किम, माइकेल मधुसूदन दीनबंधु मित्र आदि साहित्य-महारथी उसके उस विशाल मन्दिरका निर्म्माण कर रहे थे जिसमें बङ्गभाषा आज सकल-कला-विशिष्ट होकर बैठी है। भारतेन्दु और उनके साथियोंने भिन्न भिन्न रसोंकी पुस्तकें लिखनेके अतिरिक्त हास्यरसकी भी कुछ पुस्तकें लिखीं, परन्तु वह युग व्यतीत होते ही इसकी ओरसे लोग विमुख ही हो बैठे। हां, लखनवी 'आनन्द'के सुयोग्य सम्पादक पं० शिवनाथ शर्म्माकी हास्यरसप्रधान पुस्तकों और मित्रोंने हास्य-प्रधान लेखोंके पाठकोंका थोड़ा बहुत मनोरञ्जन

किया, इसमें सन्देह नहीं। तो भी हास्यरसका साहित्य हिन्दीमें नहीं सा ही रहा। एकाएक अवधके गोंडानगरमें एक प्रतिभा प्रकट हुई और उसने मानो हिन्दीकी यह दरिद्रता दूर करनेके लिये साहित्य-क्षेत्रमें पदार्पण किया। गत पांच-छः वर्षके अन्दर ही उसने हिन्दीमें हास्यरसका एक अच्छा साहित्य तैयार कर डाला है, यह निस्संकोच कहा जा सकता है। पाठकोंको बतलाना नहीं होगा कि यह प्रतिभाशाली लेखक, वर्तमान पुस्तकके रचयिता श्रीयुत जी० पी० श्रीवास्तव बी० ए०, एल-एल० बी० महोदय हैं। पहलेपहल आपकी दो एक हास्य-प्रधान आख्यायिकाएं काशीसे निकलनेवाले 'इन्दु' नामक मासिक पत्रमें प्रकाशित हुई थीं। इसके बाद जब हमने 'मनोरञ्जन' निकाला तब आप उसके नियमित लेखक हुए और यह स्वीकार करनेमें हमें तनिक भी संकोच नहीं है कि आपके मनोरञ्जक निबन्धोंने 'मनोरञ्जन' के ग्राहकों और अनु-ग्राहकोंकी संख्यामें यथेष्ट वृद्धि की। उस समयतक आप छात्रावस्थामें थे। छात्र-जीवन पूरा करके अनेक नवशिक्षित व्यक्ति विशेषतया इन प्रान्तोंके अंग्रेज़ी पढ़े लोग, हिन्दी लिख-ना-पढ़ना पाप समझते हैं। चाहे पहले वे कुछ लिखते-पढ़ते भी हों, परन्तु छात्र जीवनके बाद तो कोई विरला ही हिन्दीकी सुध लेता है। परन्तु मातृभाषाके सच्चे सेवक श्रीवास्तवजी अभिनव कर्मक्षेत्रमें अवतीर्ण होकर भी हिन्दीकी सेवा कर रहे हैं। आपने अब अपनी रचनाओंको पुस्तकाकार प्रकाशित करना

आरम्भ कर दिया है और साहित्यके इस विकल अङ्गकी यथेष्ट पुष्टि कर रहे हैं। अनुभव-वृद्धिके साथ ही साथ आपकी रचनाओंमें गाम्भीर्य, पटुत्व और उपयोगिताकी मात्रा भी बढ़ती जाती है। जिस प्रकार शीघ्रता और तत्परतासे आप पुस्तकें लिखते और प्रकाशित करते जाते हैं तथा सहस्त्र पाठकोंको स्निग्ध भावपूर्ण, विनोदमय साहित्यका रसास्वादन कराते जाते हैं, उससे आशा होती है कि आपका स्थान किसी दिन (और वह दिन अति निकट है) वैसा ही होगा जैसा अंग्रेज़ीमें मार्कट्वेन, थंकरे, डिकांस, आदिका तथा फ्रेंचमें मोलियरका है। मोलियरके तो कितने ही नाटकोंका आपने अनुवाद भी कर डाला है और अनुवाद भी इस ख़ूबीके साथ किया है कि उसमें कहींसे भी निरसता नहीं आयी है और वह स्वतंत्र रचना सी मालूम पड़ती है। इसीसे हम आपको हिन्दीका मोलियर कहते हैं।

वर्तमान पुस्तक 'नोक-झोंक' आपकी अभिनव रचना है और इसको 'नोक-झोंक' आपकी अन्यान्य रचनाओंसे कहीं निराली है। आपने इसमें अपने स्फुट निबन्धोंका संग्रह किया और उन्हें तीन खण्डोंमें विभक्त किया है। त्रिवेणीकी तीन धाराओंकी भांति पुस्तकके ये तीनों अंश पाठकोंको अलौकिक आनन्द प्रदान करनेवाले हैं। पहले खण्डमें जो चार निबन्ध हैं उनमें कहीं मिलनेकी उत्कण्ठा है तो कहीं संयोगका शृङ्गार है, एक ओर प्रोषितपतिका पतिव्रतप्राणा कामिनीका विर-

भयसे प्राणनाथको विलग न होने देनेका यह सौ सौ हठ, सहस्र सहस्र आग्रह और प्राणोंको पिपासित आंखोंमें लाकर नहीं जाने देनेकी अव्यक्त भाषामें व्यक्त अभिलाषा है तो दूसरी ओर वियोगविकला स्नेहमयीका वह स्वप्नोत्थित प्रलाप है जो सुनकर किसी भी सहृदयकी आंखोंसे आंसू टपकने लग जायंगे। स्त्रीके हृद्गत भावोंका ऐसी सहज, पर साथ ही सजीव भाषामें चित्र उतारना कुछ श्रीवास्तवजीका ही काम था। इन निबन्धोंसे आपकी अन्तर्ग्राहिणी शक्ति तथा मनुष्य, विशेषतया रमणीके स्वभावका पूर्ण ज्ञान प्रकट होता है। इन निबन्धोंको हम गद्यमें पद्य अथवा गद्यकाव्य कहें तो अनुचित न होगा। पढ़ते पढ़ते एक अनिर्वचनीय सुखका सोतासा बहने लगता है और पाठकोंके मनपर एक एक बात असर कर जाती है। आपकी इस पुस्तकका यह अंश हिन्दी-पाठकोंके लिये एक नयी ही वस्तु है और इसके जोड़के निबन्ध शायद हिन्दीके गद्य-साहित्यमें दुर्लभ हैं। भाषा और भावोंमें स्वाभाविकताकी मात्रा यथेष्ट है।

दूसरे खण्डमें "अच्छा" उर्फ़ "अक़लकी मरम्मत" नामका एक प्रहसन है। एक प्रहसनमें जो कुछ होना चाहिये सब इसमें मौजूद है। इस प्रहसनका प्रधान नायक 'बहुबासराय' बी० ए० नामक एक नवशिक्षित युवा है जिसका विवाह उसके पिताने एक ग्रामीण और अशिक्षित स्त्रीसे करा दिया, इसके लिये वह अपने पिताको कोसता और अपनी फूटी क़िस्म-

नको खोता है। हमारे समाजमें स्त्री-शिक्षाका जैसा अभाव है उसके अनेक नवयुवाओंको ऐसी बेमेल जोड़ी मिल जाती है परन्तु जो विवेकी हैं, जो अवस्थाको प्रतिकूलसे अनुकूल बना लेना जानते हैं, वे उस अशिक्षिताको भी अपना हृदयभरा प्रेम देकर उसके मनको अपने काबूमें करते और जैसा चाहते वैसा बना लेते हैं। पति ही स्त्रीका एकमात्र गुरु है, यह नीति-शास्त्रोंका वचन है। यदि स्त्री पहले सेही बी० ए० पास न हो तो भी पति उसे अपने घर लाकर उसको जीवन संग्राममें पूरी सहायक बनने योग्य नैतिक, धार्मिक और सामाजिक शिक्षा प्रदान कर योग्य पत्नी, आदर्श गृहिणी और आदर्श माता बना सकता है। लेकिन 'मदनलालराय' अपनी मैजु-एटी शानमें कुछ ऐसे चूर थे कि उन्हें अपनी अशिक्षिता सुशीला फूटी आंखों नहीं सोहाती थी और केवल उसे दुतकारा करते थे। पिताको भी खरी-खोटी सुनानेसे बाज़ नहीं आते थे। इस अपमान और व्यर्थ कलहसे सुशीलाके अन्यान्य रमणी-सुलभ गुणोंका भी विकाश नहीं हो पाता था और सोनेकासा संसार मिट्टी हो रहा था। न बाप खुश न बेटा खुश, न बेचारी स्त्री ही सुखी। तीनोंके जीवन नष्ट हो रहे थे। मद-नलालराय और उसके पिताकी बातचीत, जो पहले अङ्कके पहले दृश्यमें, दिखलायी गयी है वह बड़ी ही मनोरञ्जक है, अपनी अवस्थामें चूर मदनलालराय अपने बापको ही दकी बान-भकर उसके पैरोंपर गिरकर उससे पढ़ने लिये आरजू कर रहे

था तथा पिता अपने जीमें बेटेके इस सम्मानको देखकर खुश हो रहा था। इसी समय एकाएक जो उसने "प्यारी" कह कर सम्बोधन किया तो बापका माथा ठनका और उसने समझा कि इस लौण्डेने मुझसे मसखरापन किया और मुझे बेवकूफ़ बनाया। उसके जीमें यह बात बैठ गयी कि यह जो अपनी स्त्रीके प्रति घृणा प्रकट करता है, वह बिल्कुल बनावटी है, वास्तवमें यह जोरूका टट्टू और उसके तलवोंपर नाक रगड़नेवाला है। दूसरे दृश्यमें वसन्तवासके मित्र रसिकलाल आते हैं और पहले दृश्यमें वर्णित पिता-पुत्रके विचित्र आलाप-पर खूब चुटकियाँ लेते हैं। यह युवक ज़रा समझदार है, स्त्री-जातिका आदर करनेवाला है। वह केवल किताबी इल्म रखना ही औरतोंके लिये सबसे अच्छा गुण नहीं समझता क्योंकि रमणी प्रेम करनेकी वस्तु है और बदलेमें उसका प्रेम पाना ही दाम्पत्यजीवनकी सार्थकता है। प्रेमगङ्गामें स्नान कर दाम्पतिका जीवन पवित्र हो जाता है और सारे गुणावगुण उस धारामें बह जाते हैं। रसिकलालने वसन्तवासको बतलाया कि स्त्रीको वशमें करनेके लिए एक ही मन्त्र है। उसकी हर बातके उत्तरमें 'अच्छा' कहता जाय। बस, औरत अपने क़ाबूमें रहती है। फिर तो जैसा कहो वैसा ही करे। वसन्तवासराय इस मन्त्रको अमलमें लानेको तैयार हो गया और अपनी स्त्रीके पास गया। उसके व्यवहारोंसे सदा कुढ़ती रहनेवाली सुशीला अपने भाग्यको रोती हुई कहती है:—'क्या मैं इसी तरह चिन-

रात छुट्टा करूं ?' बदहवासने जवाब दिया—'अच्छा ।' इसी प्रकार उसको प्रत्येक बातका उत्तर 'अच्छा' ही होने लगा। यहांतक कि उसने जब मरनेकी बात कही तब भी वह 'अच्छा' कहनेसे बाज़ नहीं आया। यहाँ इस युवककी मूर्खतापर हँसी आये बिना नहीं रुकती।

इसके बाद बदहवासरायके पिताने उसकी बहूको पीहर भेज दिया क्योंकि उसने समझा कि लड़केको छकानेके लिये यही तरकीब सबसे अच्छी है। कारण इधर तो वह मुझे ऐसी गंवार औरतसे शादी कराकर जीवन नष्ट करनेवाला बतलाता है, उधर औरतके पांव पड़ता है। उसके घरकी रसोईदारिनने सहसा बदहवासरायसे आकर कहा कि 'बहूजी तो विदा हो गयीं। बदहवासने समझा कि मेरे कहनेके मुताबिक़ उसने सचमुच विष खा लिया। अब उसकी बद-हवाली देखने क़ाबिल थी। जो रोना-पीटना मचाया कि मिश्राणीकी भी अक़्ल गुम हो गयी, उसने सोचा कि रसिकलाल ही सारे सर्वनाशका मूल है। यह अगर यह आत्ममारण मन्त्र नहीं बतलाता तो मेरी स्त्री क्यों जान देती। वह पुलिसमें इत्तिला कर आया कि मेरे बाप और रसिकलाल-ने मिलकर मेरी स्त्री सुशीलाका खून कर डाला है। दारोग़ा रोज़नामचा अली अपना रोज़नामचा लिये हुए आ धमके और उसके बापको गिरफ्तार कर रसिकलालके मकानपर गये। उस समय रसिकलालकी स्त्री अपनी सखी-सहेलियोंकी

दावत करनेकी तैयारी कर रही थी। बदहवासकी स्त्री सुशीला भी वहीं थी। रसिकलाल अपनी स्त्रीसे प्रेम और विनोद भरे आलाप कर रहा था। उसकी मानिनी स्त्री बनारसी साड़ी और गहनोंके लिये हठ ठाने हुए थी। यह बातचीत भी बड़ी मनोरञ्जक है और यह मनोरञ्जकता इस वहां और भी बढ़ गयी है जहां रसिकलाल और उसकी स्त्रीमें प्रकार बातें हो रही थीं :—

"मोहनी०—या ईश्वर, मैं मर जाती तो अच्छा था।

रसिक०—तो मैं जीके क्या करूंगा? मैं भी मर जाता तो अच्छा था।

मो०—(चमककर) ख़बरदार, ऐसी बात मुंहसे न निकालो।

रसिक०—देखो, मुझसे तुमसे कोई सरोकार नहीं। मेरी बातमें न बोलो।

रसिक०—या ईश्वर—

मो०—फिर—

रसिक०—या ईश्वर—"

मोहनीने रसिकलालका मुंह बन्द कर दिया। उधर नेपथ्यसे बदहवासरायने पुकारा, कहां है कमबख्त रसिकलाल?"

रसिकने पूछा—"अयँ! कौन है?"

नेपथ्यसे उत्तर मिला—"तेरी मौत। तेरी मौत।"

इसपर रसिकने अपनी स्त्रीसे कहा, "लो आ गई।

कहते रहे कि भैरवीके वक्त शामकल्यान न छेड़ो । चलो, भीतर चलो । वह आ गयी ।

इस पर मोहनीका सब ख़्याल भूलकर पतिके प्राणोंके लिए चिन्तित हो जाना स्त्रीके प्रेमप्रवण चित्त और एकान्त पतिभक्तिको प्रकट करता है। यह अंश बड़ा ही सुन्दर हुआ है। दाम्पत्य कलह, स्वभाविक प्रेमभरे तानेतुरें और नेहभरी छेड़छाड़का बड़ा सुन्दर नमूना है। बदहवासरायका "तेरी मौत" कहते हुए इसी बातचीतके बीचमें आ धमकना ऐसा समयोपयुक्त हुआ है कि लेखककी कल्पनाकी प्रशंसा करनी ही पड़ती है।

फिर तो वहाँ सुशीलाको जीती-जागती देख बदहवास-रायकी अक्ल ठिकाने लगती है पर डाक्टरोंने उसे देखकर भी जब अपनी हठ न छोड़ी तब भाड़ुओंकी मारसे उसकी अक्लकी मरम्मत की जाती है और सब बन्धनसे छुटकारा पा जाते हैं।

इस प्रहसनमें हास्यरस ओतप्रोत भरा हुआ है और आद्यन्त घटनाका क्रम इस ख़ूबीसे बांधा गया है कि पाठक उसके प्रवाहमें बहने लग जाता है। परस्परकी बातचीत कहीं कहीं ऐसी ख़ूबीसे लिखी गयी है कि लेखकका क़लम चूम लेनेकी इच्छा होती है। प्रहसन मनोरञ्जकके साथ साथ शिक्षा-प्रद भी है। हालहीमें इसका अभिनय भी गोंडेके वकीलोंने गत अक्टूबर मासमें किया था और उसकी यथेष्ट प्रशंसा हुई थी।

तीसरे खण्डमें 'चुम्बन' और 'झूठमूठ' नामक दो गल्प हैं। इन्हें गल्प न कहकर गद्य-काव्य कहना ही अधिक उपयुक्त है। 'चुम्बन' एक छोटीसी प्रेमकथा है। कभी कभी हमारे दिलोंपर किसी रमणीकी साधारणसे साधारण बातों, हरकतों या अदाओंका ऐसा असर हो जाता है कि वे सदा याद रहती हैं, लाख भुलानेपर भी नहीं भूलतीं। उसकी यादगारीमें हम सब कुछ भूल जानेको तैयार हो जाते हैं। संसार कुछ भी कहे, लोग पचासों नाम धरें, पर हम उसी धुनमें मस्त रहते हैं। एक दिन सभीके जीवनमें ऐसा आता है जिस दिनका स्मरण हमारे लिये 'हरजपनी' माला हो जाती है। इस कथामें यही बातें दिखलायी गयी है। नायकने मेलेके दिनोंमें किसी मालिनकी लड़कीसे एक माला खरीदी और बदलेमें अपना होशोहवास, दिलो-ईमान न्योछावर कर दिया। उस मालाको लेकर वह अपने बेचैन दिलको चैन देता, उस चिरस्मरणीय घटनाकी याद करता और याद करता उस बेचनेवालीके मधुर वचन, कोमल भाव और मनोहारिणी भंगिमाको। वर्षभर बाद उसी स्थानपर उसी उत्सवके दिन फिर दोनोंकी देखा-देखी हुई? दिलका दरिया उमड़ पड़ा—छोटे, थोड़े, पर भावभरे दो ही शब्दोंमें दोनोंने अपने हृदय-निहित भावोंको व्यक्त कर दिया और भावके आवेशमें आ उसने अपने हृदय-निधिका मुखचुम्बन कर लिया। फिर क्या था? फिर तो मानो 'लोहेने पारस छू लिया, मुर्देने अमृत पी लिया।' यह कथा भावपूर्ण

कल्पनामय और भावमय है। काव्यकी पूरी सामग्री इसमें मौजूद है। गद्य-काव्यका यह भी एक अच्छा नमूना है।

'भूटझूठ' भी इसी श्रेणीका एक गद्य-काव्य है। कथा इसमें भी कुछ नहीं है, भावोंकी ही प्रधानता है। एक कवि अपने कल्पनामय संसारमें ही विचरा करते और अपने प्रतिभा-बलसे जिस अलौकिक सृष्टिकी रचना करते उसे धराधामपर ही उतार लाना चाहते थे। परन्तु उन्हें उस छिपे भाण्डारका पता ही नहीं था जो रमणीके प्रेमभरे हृदयमें विधाताने स्वभावतः ही संचित कर रक्खा है। वे सदा यही चाहते कि जैसी काव्यवर्णित नायकाएँ अपने प्रेमको प्रेमभरे सौ सौ सम्बोधनोंसे सम्बोधित करती हैं; कोयलकी कूक, मलय-पवनकी सनसना हट, वसन्तकी बहार और वर्षाकी फुहार पड़नेपर वे जिस तरह प्रमोन्मत्त होती, तपती, रोती और प्रलाप करती हैं उसी तरह मेरी घरेलू प्रिया भी करे। परन्तु उन्हें यह नहीं विदित था कि वे अपनी शक्तिशालिनी लेखनीसे जो अतिमानुष नायिका गढ़ते हैं वह विधाताके सुपुष्ट हाथोंसे गढ़ी हुई प्रतिभासे परे हैं,—अलौकिक, अतिरञ्जित और अलीक है—मृगमरीचिकाके तुल्य है। वह केवल कविके साम्राज्यमें ही शोभा पा सकती है। इसी बेचैनीमें कविजी घुल घुल कर मरे जाते थे। एकाएक आप बीमार पड़ गये, मरनेके किनारे पहुँच गये। उस समय उन्हें' मालूम हुआ कि उनकी स्त्रीके हृदयमें उनके प्रति कैसी प्रगाढ़ प्रीति, कैसा अटूट अनुराग,

है। उनका माया-भ्रम मिट गया, काव्य-स्वप्न टूट गया, कल्पनाजगत्‌से वे प्रकृतिके सिरजे हुए संसारमें आये और पत्नीके एक 'झूठमूठ' शब्दपर अपनी सारी कविताई न्यौछावर कर दी। भावमय गल्प-लेखनमें श्रीवास्तव जी वैसे ही कुशल हैं जैसे हास्यरसके अङ्कनमें, यह बात इन गल्पोंको पढ़कर स्पष्ट ही विदित हो जाती है। हमें आशा है कि आप हास्य-रसके ग्रन्थोंके साथ ही साथ इस प्रकारके भावमूलक कल्पनामय प्रबन्ध भी सदा लिखते रहेंगे।

इस पुस्तकके सम्बन्धमें इतनी बड़ी प्रस्तावना लिखनेके लिए पाठक हमें क्षमा करें। वास्तवमें इस ग्रन्थको पढ़कर हमारे मनमें जो विचार पैदा हुए हैं उन्हें ही यहां लिपि-बद्ध किया है। श्रीवास्तवजीने हमें अपने ग्रन्थकी प्रस्तावना लिखनेका भार दिया। इसके लिये हम उनके आभारी हैं, पर सच पूछिए तो हम इस आदरके योग्य नहीं थे क्योंकि न तो हम कोई गुणी हैं, और न गुणके परखैया। इसलिये यह काम वे किसी सुयोग्यको सौंपते तो अच्छा था, तो भी हमें सन्तोष इतना ही है कि हमने उनकी आज्ञाका पालन कर अपने विचार प्रकट कर दिये।

निवेदक,
ईश्वरी प्रसाद शर्मा.
भूतपूर्व सम्पादक, 'मनोरञ्जन'
'धर्माभ्युदय'।

आगरा,
१५—११—१८

पहला खण्ड

(स्त्री-भाव)

—:※:—

"My only books
Were women's looks,
And folly's all
they've taught me"—T. Moore.

'प्यारीकी अपने दिलसे वह रूठी रूठी बातें,
भावें न कैसे दिलको दिलकी कहानियां हैं ।
वह खुदबखुद बिगड़ना वह बेमनाए मनना,
यह सारी रसकी बातें रसकी कहानियां हैं ।

—[illegible]'

नोक-झोंक

पहली झांकी—

१. मैं न बोलूंगी······(मिलनेकी तैयारी)

(यह लेख १९१३ में लिखा गया और उसी साल काशीके "इन्दु" में और फिर उसके बाद सरस्वती वाटीमें प्रकाशित हुआ)

दूसरी झांकी—

२. हमसे न बोलो—······(भेंट)

(यह १९१४ में लिखा गया और उसी साल आरेके "मासिक मनोरञ्जन" में प्रकाशित हुआ).

तीसरी झांकी—

३. सुनो तो, या जाने न दूँगी—······(बिछुड़न)

(यह १९१४ में लिखा गया और उसी साल 'इन्दु' में प्रकाशित हुआ)

चौथी झांकी—

४. उढ़ुंक—······(वियोग)

(यह १९१४ में लिखा गया और उसी साल 'इन्दु' में प्रकाशित हुआ)

मैं न बोलूंगी

-: या :-

प्यारीका रूठना

पहली झांकी—मिलनेकी तैयारी

क्यों बोलूँ? हां हां, बिना बोलाये क्यों बोलूँ? क्या पड़ी है मुझे? वही बड़े जगके अनोखे हैं? उन्हींको बड़ा मुंह फुलाना आता है? बात बातमें तिनक जाते हैं। ज़राहीमें नज़र बदल जाती है। जिनोकी बात भी कोई बात हो। हां, झूठही मूठ। एक बिगड़नेकी आदत पड़ गई है। न मुंह फुलाएं, तो खाना न पचे क्या? अच्छा, यही सही। न बोलें—बलासे। देखूं— कबतक नहीं बोलते। मेरी माँ नहीं कि बाप नहीं, कि घर नहीं कि द्वार नहीं? कि यों ही आस्मानसे गिर पड़ी हूं, जो मुझे घड़ी घड़ी आंख दिखाते हैं? मैं क्यों सहने लगी किसी की? किसीसे कम हूं? किस बातमें कम हूं? मचले हैं, तो मचले रहें। मैं न

मानने जाती। मुझे भी मचलना आता है। मैं भी बिगड़ना जानती हूं। उन्हींको नहीं आता? वही तो अकेले तेवर बदलना जानते हैं। मेरे पास तेवर ही नहीं गोया। बड़े नखरेवाले हैं। और मैं ··हाँ हाँ नखरेका हाल बेसवा जाने। हम बहूबेटियां यह क्या जानें? मैं तो सीधी हूं। मैं भोली हूं। वह इस बलपर भूले हैं। अच्छा, अच्छा, जो समझे है, समझे रहें। मना कौन करती है? पगली कहते हैं, तो पगली ही सही। बावली तो बावली सही। कहें जो उनके दिलमें आये। मैं किसीकी ज़बान क्यों पकड़ने लगी? उंह! पकड़के करूंगी क्या? और करना चाहूं, तो कर ही क्या लूंगी? मगर हाँ, अब उन्हें मालूम होगा, जैसी मैं सीधी हूं, वैसी नटखट भी हूं। अच्छा, जो वह तने हैं तो मैं भी अब तनी हूं। वह खिंचे हैं, तो मैं भी खिंची रहूंगी। यही सही। वह नहीं बोलते, तो मैं क्यों बोलने लगी? वह समझते हैं कि मैं मनाऊंगी। आहा हा! कहीं मनाऊं न मैं? मैं? और उन्हें मनाऊं? मुंह धो रक्खें। जो हो गया, वह हो गया। अब नहीं मैं मनानेवाली। वह क्यों नहीं मनाते मुझे? एकाध दफे उनके हाथ क्या जोड़ दिये, कि समझ रक्खा है कि बार बार नाक रगड़ूंगी। वाह री समझ! अय वारी गई ऐसी समझपर नन्हें हैं बड़े वह। हां, नहीं तो क्या? मनानेके इन्तज़ारमें बैठे हैं, बैठे रहें। यह

नहीं जानते कि ख़ुद मनाना पड़ेगा। एक नहीं, सौ दफ़े मनाना पड़ेगा। बस, मैं तनी रहूं ज़री। आप दौड़े आएंगे। हाथ जोड़ेंगे, ख़ुशामदें करेंगे। मगर मैं "न बोलूंगी। वह कुछ कहें, मैं नहीं पिघलनेकी। आँचल पकड़के मेरी तरफ़ देखेंगे, हाथ झटक दूंगी। सामने आएंगे नज़र फेर लूंगी। गुद-गुदानेके लिए हाथ बढ़ाएंगे, मैं उंगलियां मरोड़ दूंगी। मगर बोलूंगी नहीं। ठुड्डी उठाके मेरा मुंह ताकेंगे, आंखें बन्द कर लूंगी। हंसी आयेगी, हंसी पी जाऊंगी। ओंठ मुस्कुराएंगे, तो धरके चबा लूंगी। चुटकी काटेंगे, तो सिमटके अलग हो जाऊंगी और जो ज़्यादा लपझप करेंगे तो उठके चली जाऊंगी मगर हाथ नहीं तो साड़ी ज़रूर ही पकड़ लेंगे। मैं हाथ करके बैठ जाऊंगी, मगर—बोलूंगी नहीं। हां, हां, ज़बानपर तो क़ाबू है। मगर ओंठ कहीं धोका न दे जाएं मैं बनूं तो बनूं, पर आंखोंको क्या करूं? नहीं भण्डा न फोड़ दें। जब मन मेरे बसमें है, तो निगोड़ी नज़र क्या चीज़ है? बहकके किधर आयेगी? जिधर घुमाऊं उधर चलेगी। और न कुछ बन पड़ा, तो नीची ही रक्खूंगी। वह छेड़ेंगे। छेड़ा करें, सुनती कौन है? वह लाख कहें, मैं ऐसी नादान कब, कि उनकी बातोंमें आऊं? वह तो सैकड़ों ही बातें बनाएंगे, मनाएंगे फुसलाएंगे, रिझाएंगे, मगर"उहुंक"मैं न बोलूंगी, वह मेरे

हाथको अपने दोनों हाथोंमें दबाएंगे, मेरी चुड़ियां घुमाएंगे, मेरी आरसी निकालेंगे और पहनाएंगे, पैरके अंगूठेसे मेरा बिछिया दबाएंगे, मेरी उंगलियां काटेंगे, मैं सी करके रह जाउंगी, मगर बोलूंगी नहीं। ग्लासमें एक उंगली डालेंगे। फिर मेरे मुंहपर छींटा देंगे। खुद ही पोछेंगे, मैं मुंह फेर लूंगी। वह सरसे साड़ी सरकाएंगे। मेरे बालोंसे उलझेंगे, मेरी लटोंको हाथोंमें लेंगे और चूमेंगे। मगर मैं···न बोलूंगी। वह मेरी गोदमें सर रखके लेट जाएंगे। मेरे आंचलमें चूनट डालेंगे। मेरे गलोंपर रूमालसे थपकियां लगाएंगे। मेरी गर्दनमें दोनों हाथ डालेंगे और अपनी तरफ़ झुकाएंगे। मगर मैं···न बोलूंगी। मेरी पलकें उठाएंगे। ओंठोंको हटाकर दांतों पर नाख़ून मारेंगे। मुझे झकझोरेंगे। मेरी ठुड्डी पकड़के मेरा मुंह हिलाएंगे। मगर मैं···न बोलूंगी।

अरे! वह आ रहे हैं। इतनी जल्दी? मैं ज़रा बना तो लूं। मगर बनूं कैसे? भवें चढ़ती ही नहीं। हैं! हैं! मुस्कुराहटको कैसे रोकूं? अरे! मुझे क्या हो गया? अभी अभी तो अच्छी ख़ासी तनी हुई थी, वह बिगड़ना क्या हुआ? वह मचलना किधर गया? वह तेवर कहां है? अब क्या करूं? बिगड़ूं तब तो कोई मनाए। बिगड़ूं क्या अपना सर? यह नौज निगोड़ी सब बिगाड़े देती है। भई, मुझसे न होगा। वह

चिंक उठी। यह किसीने पैर अन्दर रक्खा। मैं तकियेमें मुंह छिपालूं। वह कुछ कहें, मगर मैं······न बोलूंगी—न बोलूंगी, न बोलूंगी।······अरे! यह कौन है? अः! हमें नहीं अच्छा लगता ·····उफ़! जाव, तुम बड़े वह हो। हाय!

हमसे न बोलो

-: या :-

प्यारीका मचलाना ।

दूसरी झांकी—भेंट ।

जी हां, मैंने माना। यह भी सही। वह भी सही। सब कुछ सही। आप सच्चे। आपकी बातें सच्ची। मैं ही झूठी साहब। बस? मैंनेही लानेका वादा किया था। चलते वक्त मैंनेही मीठी मीठी बातें की थीं और··· आप क्यों बिगड़ते हैं? आपसे कौन कहती है? किसको जब किसीकी परवाह हो तब तो कोई लाये। यों भला किसीको क्या पड़ी है? अच्छा साहब, न लाये न सही। वहीं दूकान-पर भूल आए। साथ लानेका ख़्याल ही उतर गया। हिफ़ा-ज़तसे आलमारीमें रक्खी है। नौकरने असबाब बांधा था। उसीने ग़लती की। गाड़ीमें छूट गयी। रास्तेमें गिर गयी। यह सब मालूम है। साफ़ साफ़ क्यों नहीं कहते कि किसीको दे आए? या किसीको दिखायी थी, उसने छीन ली। इतनेको

छिपानेके लिए इतना बहाना ! रुपये-अधेलीकी चीज़के बारेमें अभीसे यह हालत है। तो आगे ईश्वर ही जाने क्या हो ?… अरे न पहनूंगी। न सही। कुछ बिगड़ा नहीं जाता। उसके बिना जान नहीं निकल रही है। मैं छोटे बाबूसे मंगवा लूंगी मेरे पास रुपये हैं। कुछ आपकी मोहताज़ नहीं हूं। आपको ऐसे ही बड़ी रुपयेकी मुहब्बत थी तो कहा क्यों नहीं ? दाम भेज देती। कौनसी बड़ी चीज़ थी ? जिसके लानेमें आपके हाथ टूटे जाते थे। यहां मिलती होती तो आपसे न कहने जाती…मैं जानती हूं कि आपको ज़रा भी फ़ुरसत नहीं मिलती। आपको भला छुट्टी कहां ? दिन-रात यही फ़िक्र लगी रहती होगी कि किस तरहसे कौड़ीसे पैसे, पैसेसे रुपये, रुपयेसे अशर्फ़ियां हों। फिर चुन चुनकर बक्सके खानोंमें रक्खें। ऊपरसे दोहरे ताले लगायें। ताले न हों तो मुझसे ले आइये। और…हां हां ताना मारती हूं। तो फिर ? आपको क्या ? आप क्यों बीच बीचमें तिनक उठते हैं ? न कोई आपसे बोले न चाले। मगर आप ज़रूर बोलेंगे। उफ़ ! अरे !…मैं सच कहती हूं यह सब मुझको ज़रा नहीं भाता। जब मुंहकी बात और कुछ कहते नहीं बनता, तब हाथ लपकाने लगे। इसमें जीत क्या जाते हैं कि समझते हैं अपने हिसाब बड़ा अच्छा काम करते हैं। बातोंका जवाब बातोंमें दीजिये अगर है सके

आप। नहीं तो चुपके बैठिये। हटाइये हाथ अपना। मैं आपसे नहीं बोलती। रहने दीजिये। जो कुछ सुनना था सुन चुकी सब। बस, अब ज़्यादा न छेड़िये। अरे! आह! ईश्वर जाने तुम्हें इस लपझपमें क्या मज़ा मिलता है। यहां जान सांसतमें पड़ जाती है। बैठे-बैठाए न कुछ हुआ चिकोटी ही काट बैठे। गलेमें बांह डाल दी। वाह वाह! अच्छा मुझे मिट्टीका बबुआ समझ रखा है। आख़िर मैं भी तो आदमी हूं। मेरे बदनमें भी ज़रासी जान है। और तुम्हें क्या किसीकी जान जाय या रहे। कोई जिये या मरे। हो तो मर्द। अपने मतलबके यार।···क्या कहा? फिर तो कहना। नज़र मिलाऊं? अहा हा! अब लीजिये। थोड़ी देरमें कहेंगे कि ज़रा मेरे सामने नाचो। जनाब, तशरीफ़ ले जाइये आप वहीं, जहां रोज़ आंख लड़ाते थे। यहां कोई ऐसी बेशर्म नहीं है जो आपसे बैठी आंखें लड़ाये। देखा? मैं कहती न थी······कुछ नहीं। क्यों बताऊं? अपने दिलसे बातें करती हूं। जी हां, मुझपर सनक सवार है। बस?···बार बार एक न एक खुरपेंच लगाया करते हैं। क्या?...माफ़ कीजिये। मुझसे बेशक बड़ी ग़लती हो गई। मैंने आपको तुम कह दिया। आपको टोकनेकी इतनी ज़रूरत न थी। मैं ख़ुद ही माफ़ी मांग लेती। मैं मानती हूं कि मैं गंवार हूं। मैं फूहड़ हूं। मुझे बातें करनी नहीं।

आतीं। आपकी तरह मैं अंगरेज़ी पढ़ी तो हूं नहीं। आप जानते ही हैं। तो फिर जान-बूझकर आप क्यों मुझसे बोलते हैं? जाइये, वहीं जाइये। जिसकी मीठी बातें आपके मनको लुभाती हैं। मेरी तो दिलमें खटकती होंगी।...हाय!......हुआ, क्या कुछ नहीं। कह तो दिया कुछ नहीं। कै दफ़े कहूं? नहीं, नहीं, मेरा सर नहीं दुखता। आप क्यों तकलीफ़ करते हैं? आपके हाथ जोड़ती हूं। मुझे तंग न कीजिये...जी हां, तबीयत ही मेरी ख़राब है। आप किसी तरहसे ख़ुश तो रहें। आपकी यही मर्ज़ी है कि मैं बीमार ही रहा करूं तो क्यों नहीं एक रोज़ कुछ......हां और क्या सब दिनका झगड़ा पाक हो जाय। न रहेगा बांस न बजेगी बांसुरी। उहुंक! रहने दो। तुम्हारा रूमाल ख़राब हो जायगा। मैं आप अपने आंसू पोंछ लूंगी। नहीं नहीं, मैं रोती नहीं हूं। अच्छा, तो रोती ही हूं। तुम्हारी बलासे। तुम्हें क्या ग़रज़? तुम क्यों इतने परेशान होते हो? पूछकर क्या करोगे? मैं योंही रोती हूं। रोलाई आती है, रोती हूं। और मुझे नहीं मालूम।......जी हां, नहीं बोलती। किसीका डर है? क्या कर लोगे तुम? चले हैं मुझीसे बातें बनाने। ज़बानकी तरह दिल भी चिकना हो तब तो? और नहीं तो क्या झूठ कहती हूं? अच्छा, तुम्हीं बताओ, दिल कहां है तुम्हारा? चलो चलो देख लिया। आप एक दिन

भी न हुआ, मगर अभीसे ऊधम मचाने लगे। जानेकी तैया-
रियां होने लगीं। तो आप क्यों थे? कुढ़ाने, जलाने, सताने
और किस लिये? कहते क्यों नहीं? हां? सारा दिन सुनते
सुनते कान पक गये कि इम्तहान है और क्या है। सिर्फ दो
रोज़ रहेंगे। यह करेंगे, वह करेंगे। अच्छा भई, जो जीमें आवे
वह करो। सुनाते किसको थे? अरे मुझसे क्या सरोकार!
इतना ही जो तुम्हें ख़्याल होता तो मेरी चीज़ लानेको भूल
जाते? हाय!...चलो हटो। रहने भी दो। बहुत हुआ। अब
मुझसे न बोलो। मेरा हाथ छोड़ दो। यह क्या? क्या पहनाते
हो? क्या है, क्या? वाह मेरी चूड़ियां!!! देखें देखें, देखूं।
छिपा क्यों लिया। दिखा दो। तुम्हें हाथ जोड़ती हूं। ज़रा
दिखा दो। अच्छा मैं मुंह फेरे लेती हूं। तुम्हीं पहना दो।
लो आंखें भी बन्द कर लीं। अरे!...आत्र, तुम्हारे मारे लो...
अच्छा अब तो दिखा दो। क्या?...अच्छा! अब आप यों
कहने लगे कि 'हमसे न बोलो।"

सुनो तो

-: या :-

प्यारीका रोकना।

—::*::—

तीसरी झांकी—बिछुड़न।

अरे! क्या कहींकी तैयारी कर ली? क्या सचमुच जाते हो? तुम्हें मेरी क़सम, सच बताओ, नहीं नहीं, ऐसा नहीं हो सकता, तुम मुझे धोखा देने आये हो, मैं जानती हूं, तुम मुझे ऐसे ही परेशान किया करते हो। आज क्या नई बात थोड़ी ही है? मैं तुम्हारी चालोंको खूब समझती हूं, उस छुट्टीमें भी तुमने मुझे ऐसे ही कई बार घबड़ा दिया था।...तार क्यों दिखाते हो? क्या इससे मैं यह समझने लगूं कि तुम जा रहे हो? चलो, चलो, रहने दो। यह झांसा किसी और स्त्रीको देना। तुम्हारे पास तो योंही तार आया करते हैं। अभी छुट्टीमें दस रोज़ बाक़ी हैं, अभीसे जाके क्या करोगे? क्या किसीसे मिलना है? किससे मिलना है? ज़रा मैं भी तो सुनूं। कैसी है वह? गोरी है कि सांवली? न गोरी है न सांवली, गेहुआं रङ्ग है, क्यों? है न यही बात? मुझे न दिखाओगे? अरे एक ही झलक।

हाँ, हाँ तुम्हारा बड़ा गुन मानूंगी,......खूब मटकती होंगी, यों नाकपर उङ्गली रखके बातें करती होंगी। यों गालपर हाथ रखके बैठती होंगी। उंह! मुझसे तो बनता भी नहीं, हाँ जी, उमर क्या है उनकी? यही नव तीन बारह और तीन पन्द्रह, पन्द्रह बरस कुछ महीने क्यों?—उफ़!......जाव, यही तो नहीं अच्छा लगता, हाथ हरदम चुलबुलाया ही करता है, इस ज़ोरसे ओंठ मल दिया, उफ़। भभमा रहा है, देखो देखो लहू छलक आया कि नहीं, मुस्कुराते क्या हो, यह पानकी लाली है? तुम्हीं बताओ, पानकी सुर्खी कहीं ऐसी होती है? अरे!......यह क्या किया, तुम बड़े ख़राब आदमी हो। यह सब बातें मुझे ज़रा नहीं भातीं, जाओ जाओ, तुम्हें यहां किसने बुलाया? मैंने तो नहीं कहा था कि तुम मेरे पास आओ, फिर क्या करते आप? आप हैं बाबू साहब वहांसे चारजामा अरजामा कसके। मुझे डराने आप हैं कि हम जा रहे हैं। तो जाते क्यों नहीं, खड़े किस लिये हो? अरे!......मरी, मरी...हाय!...छोड़ो. बापरे बाप, तुम तो दम निकाल लेते हो। मुझे क्यों इतना सताते हो? अजी तुम कैसे आदमी हो? तुम्हें गर्मी नहीं मालूम होती? हाय जोड़ती हूं। मुझे उठने दो। अच्छा तो तुम्हीं ज़रा खिसकके बैठो। देखो कैसी गर्मी है? उहूं बलासे। मुझे क्या तुम्हारे

ही कोटमें शिकनें पड़ रही हैं।—कहां तो जा रहे थे, कहां यहां आए हैं आरामसे बैठने। जाओ जाओ, जल्दी जाओ। नहीं गाड़ी छूट जायगी। वक़्तसे न पहुंचोगे तो...... हूं! हटा क्यों ले गये! आओ आओ और मुंह बन्द करो। ताकते क्या हो? नज़र लगानेवाले हो? अब उठो। बहुत हुआ। देखो लोग क्या कहते होंगे? कि अबतक नहीं आए। ज़रा चुप तो रहो... वह सुना? तुम्हें कोई पुकार रहा है। वह देखो फिर...गाड़ीवाला है। हां हां वही है। फ़ज़ूल देर कर रहे हो। तुम मुझे साफ़ साफ़ बता दो कि आख़िर चाहते क्या हो। कुछ यहांसे लेके भागनेवाले हो? कहो तो उठ जाऊं। या झूठमूठ ही मुझे तङ्ग करने आए हो? मुझे मालूम हो गया। तुम जाओ जाओगे कहीं भी नहीं नहीं। सिर्फ़ आए हो मुझसे ख़ुशामदें कराने। रात भी तुम इसी तरह कहते रहे कि कल जाऊंगा। मगर मैं तुम्हारे चकमेमें कब आनेवाली थी? रात अब काल न चली तो इस वक़्त आए हैं कसर निकालने। वाह! बाबू साहब, वाह! मानती हूं। ज़रा शीशेमें मुंह तो देख लीजिए। मांग बिगड़ गई है। इसी सूरतसे आप मिलने जा रहे हैं? और उनसे? हां हां जल्दीमें कुछ ख़बर थोड़े ही रहती है? हमें तो यही ताज्जुब है कि आप इतने दिनों तक यहां कैसे रुके?... क्यों, अब काहेका इन्तज़ार है? जाइए जाइये। मगर कौन

करती है यहां ? मैं भला आपको क्यों रोकने लगी ? खुशीसे जाइये ? मगर हां—किसीके जालमें पड़कर इस अभागीको एकदम न भूल जाइएगा। अच्छा! बन्दगी···अरे! यह क्या? क्या हुआ क्या? तुम ऐसे सुस्त क्यों पड़ गए? सच बताओ। तुम्हें मेरी बातें बुरी लगीं। माफ़ करो, मुझसे बड़ी ग़लती हुई। मैं सिर्फ़ हँसी कर रही थी। हां हां,! हाथ न जोड़ो, यह क्या कर रहे हो? मैं तुम्हारे पैर पड़ती हूं, मुझे मत शर्माओ। मुझसे सचमुच बड़ा कसूर हुआ। मैं नहीं जानती थी कि तुम्हें···माफ़ करो हाथ जोड़ती हूं। पांवोंपर सर रखती हूं। मैं बड़ी बेहूदी हूं। अब क्या हुआ? उठे क्यों जाते हो? अरे! कहां चले? बैठो तो। ज़रा देर और बैठो। अभी तो आए हो। अभीसे देर हो गई? सचमुच जाते हो? अजी नहीं। कहीं ऐसा ग़ज़ब भी न करना। सच बताओ, क्यों परेशान करते हो? कौनसी ऐसी ज़रूरत पड़ गई? हां हां, तार तो देखती हूं। अजी ऐसे ऐसे बावन तार आया करते हैं। तो क्या तुम जा ही रहे हो? हाय! हाय! मैं इस-को अबतक दिल्लगी ही समझती रही। निगोड़ी दिल्लगी भी बाज़ वक्त, जानका काल होती है। मैं क्या जानती थी कि तुम जा रहे हो? नहीं नहीं, आज मत जाओ। किसी सूरतसे रुक जाओ। कोई बहाना करो। ऐसी ही बड़ी जल्दी है तो

कल जाना। मैं आज तो न जाने दूंगी। कुछ हो, पैरोंसे लिपट जाऊंगी। दरवाज़ा रोकके खड़ी हो जाऊंगी और जाने न दूंगी। टोपी छीन लूंगी। घड़ी छिपा दूंगी, दामन फाड़ दूंगी, नाकपर सेन्दुर गाड़ दूंगी, कमीज़पर पीक फेंक दूंगी और जाने न दूंगी, आंचलसे हाथ बांध दूंगी, सरके बाल बिगाड़ दूंगी, गालोंपर टिकुली चिपका दूंगी, बदनपर रोशनाई छिड़क दूंगी, और न—जाने न दूंगी, चाहे कुछ हो, हाय! क्यों छोड़ाते हो? मैं दामन न छोड़ूंगी, तोड़ डालो, अङ्गुलियां तोड़ डालो, मैं कुछ नहीं कहती, हाय! के दफ़े कहूं! मैं न मानूंगी, नहीं नहीं, तुम मत समझाओ, तुम्हारी बातोंमें आज न आऊंगी, देखो अच्छा···जाओ जाओ, उधर पैर रखा कि इधर मैंने अपना सर पीट लिया। बलासे कुछ हो, मगर न, आज तुम मत जाओ, क्यों तुम किसी तरकीबसे नहीं रुक सकते? हाय! मैं क्या करूं, कैसे तुम्हें रोकूं! सचमुच तुम बड़े ही कठोर हो। लो, खुशामद कर चुके। अब तो रुक जाओ। नहीं रुक सकते? तो मेरा क्या बस? अच्छा...कब आओगे? हाय! जाते हो? ज़रा देर तो ठहरो। अरे मेरे राम!···तुम चल दिए आख़िर···चले ही जाओगे? क्या तुमने एक नज़र देखनेकी भी क़सम खा ली?···क्यों? जा रहे हो?...अयं? सचमुच?···अच्छा, सुनो तो···धममाम।"

उहुँक्

-: या :-

प्यारीका स्वप्न
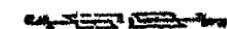
चौथी झांकी—वियोग

उहुँक्! उहुँक्! है! हैं! मैं लुट गई। मेरी नींद क्या उचटी मेरी क़िस्मत पलट गई। मैं अभी कहां थी और कहां आ गई? अभी उस कमरेमें बैठाहुआ मेरे लिये कौन इन्तज़ार करता था? जिससे मिलनेको आई, मगर देखते ही झिझक पड़ी। किसने मुस्कुराके पूछा कि अम्माँ सो गईं? और मैंने दबी ज़बानमें कहा 'उहुँक्'। मैं कटोरी लेके चलने लगी तो किसने मुझसे ज़रा रुकनेके लिये कहा? और मैंने मुस्कुराके कहा 'उहुँक्'। किसीका लपक-कर अञ्चल पकड़के कहना 'सुनो तो', और मेरा मुँह फेरके कहना 'उहुँक्'। हाथ थामके कहना 'बैठो' और मेरा हाथ झटके कहना 'उहुँक्'। किसीका ललचाई हुई नज़रसे देखना और किसीका शर्माकर कहना 'उहुँक'। किसीका गलेमें बाँह

डालना और किसीका भुँभलाकर कहना 'उहुँक्'। किसी-का गुदगुदाना और किसीका हाथ जोड़के कहना 'उहुँक्'। किसीका कुछ कहना और किसीका रोकर कहना 'उहुँक्'। वह सर झुकाकर कहना 'उहुँक्'। वह हाथ झटककर कहना 'उहुँक्'। वह मुँह छिपाकर कहना 'उहुँक्', वह गोदमें सर रखके कहना 'उहुँक्', वह 'उहुँक्' कहके हाथ पकड़ लेना, वह 'उहुँक्' कहके आंखें बन्द कर देना, वह 'उहुँक्' कहना और मचल जाना, वह 'उहुँक्' कहना और निर्दयी बादलोंका गर्ज उठना।

हाय! अब मैं किससे 'उहुँक्' कहूं? मेरी 'उहुँक्' अब किसके दिलपर बिजलियां गिराए? किसके कलेजेमें बरछियां चलाए? मेरी 'उहुँक्' पर तड़पनेवाला किधर गया? मेरी 'उहुँक्' पर बेमौत मरनेवाला कहां गायब हो गया?......... अय मेरी नींद! यह अच्छी बात नहीं, मेरा शिकार लौटालती जा। मेरी चीज़ फेरती जा तू उसे अपने साथ क्यों ले गयी?

हाय! तुमपर वज्र पड़े अय बादलो! तुम्हें इसी वक्त गाके मारना था! मैंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा? तुम्हें आंसू बहाना था तो अकेले ही आंसू बहाते। मुझे जगाके अपना साथी क्यों बनाया? अरे! डाहले भरे पपीहे! तुझे भी इसी वक्त रोना था! यह तूने कबका बैर निकाला? मैंने तुमसे

कब डाह की थी ? तुझसे मेरा सपनेमें भी हँसना न देखा गया ? चिढ़ानेको जगाया। अच्छा चिढ़ा ले, खूब जी भरके चिढ़ा ले।

अय हवा ! तू क्यों ठंडी सासें भर रही है ! तुझे भी क्या किसीने सोतेसे जगा दिया ? तू भी क्या किसीकी यादमें ख़ाक उड़ा रही है ? चारों तरफ़ किसीको ढूंढ़ती हुई मारी फिरती है ? कहीं ठिकाना नहीं मिलता ? या मुझे चिढ़ानेके लिये मेरी नक़ल उड़ा रही है ? मेरे बालोंको बिखरा-कर किसीके हाथोंकी याद दिला रही है ? सच बता, तू भी मेरी तरह सताई हुई है ? या सिर्फ़ मुझे सतानेके लिये स्वांग रचा है ? अच्छा सतानेको चली है तो बहुत सता चुकी। मेरे दिलकी आगको भड़का चुकी। अब तो तेरा कलेजा ठण्ढा हुआ। चल। अब न छेड़। बहुत हुआ। बस, मेरी उचटी हुई नींदको बुला दे। मेरे मचले हुए दिलको सुला दे। फिर मुझे वही सपना दिखा दे।

आ आ री प्यारी नींद ! मान जा मेरी दुलारी नींद ! मुझसे क्यों रूठ गई ? मुझे छोड़कर यकायक क्यों चली गई ? तेरे बिना मुझे कल नहीं। बड़ी देरसे राह देख रही हूं। आ, जल्दी आ। अपने परोंमें उसको भी ला। तुझे सर आंखों पर बिठा लूंगी। आ री नींद, देर न लगा। अरी कम्बख़्त, मू

अकेले क्यों आती है ? मेरे ज़िद्दीको कहां छोड़ आती है ?...
डालियां झूमने लगीं। चाँदने भी चद्दर तानी। हवा भी जम्हा-
इयां लेने लगी। बादलोंने भी करवटें लीं। अब तू उसे ला,
फिर उसकी एक झलक दिखला...वह लाई। हां हां, वही
है।... खबरदार ! अय पत्तो ! कहीं चौंकना मत। नहीं भाड़में
झोंक दूंगी। कोइलियो ! कहीं जग न उठना, नहीं जलाके
कोयला कर दूंगी। चांद ! झांकना मत, नहीं चेहरा बिगाड़
दूंगी। फूलोंकी कलियो ! कहीं मुंह न खोलना, नहीं मुंह
लाल कर दूंगी।

अरी शर्म ! तू यहां कहां चली आती है ? हट ! हट ! मैंने
तुझे कब बुलाया ? तेरा यहां क्या काम ? तू यहां आके क्या
देखेगी ? तुझे यहां आते शर्म नहीं मालूम होती ? छिः !
शर्म होकर ऐसी बेशर्मी। तेरे हाथ जोड़ती हूं। टल जा ज़रा
देरके लिये। दो दो बातें कर लेने दे। मेरे पीछे इस तरह क्यों
पड़ी है ? हाय ! सपनेमें भी मेरा साथ नहीं छोड़ती। एक रोज़
तो अलग हो जाती। तू मुझे क्यों नहीं उनसे अकेले मिलने
देती ? उनके सामने मेरी गर्दन क्यों झुका देती है ? मेरा सर
क्यों घुमा देती है ? मेरी आंखें क्यों गिरा देती है ? मेरी ज़बान
क्यों पकड़ लेती है ? उन्हींके सामने सताना आता है ? अके-
लेमें मेरे पास आते शर्म मालूम होती है ? अकेलेमें कभी आ,

तो बताऊं । न जायेगी यहांसे ? हाय ? न मानेगी ? 'उहुँक्'
के सिवा मेरी ज़बानसे और कुछ निकलने न देगी ? अच्छा,
यही सही। बैठी रह तू। मैं भी हर बातमें 'उहुँक्' ही
कहूंगी।...आ, मेरी 'उहुँक्'के समझनेवाले आ। मेरी 'उहुँक्'
को न माननेवाले आ। मेरी 'उहुँक्' पर 'उहुँक्' करनेवाले
आ। आ, मेरी 'उहुँक्' को ज़रा खूब समझना।

नोक-झोंक

दूसरा खण्ड

नोक-झोंक

-: उर्फ़ :-

अच्छा प्रहसन

 WRITTEN IN 1918.

Successfully Staged by—

THE P. L. D. CLUB, GONDA

On the 19th October, 1918.

AND

THE M. C. D. CLUB

ALLAHABAD.

On the 22nd November, 1919.

"We love a girl for very different things than understanding We love her for her beauty, her youth, her confidingness, her character with all its faults, capuies and God knows what other inexpressible charms, but we do not love her for understanding. Her mind we esteem (if it is brilliant), and it may greatly elevate her in our opinion; nay, more, it may enchain us when we already love. But her understanding is not that which awakens and inflames our passion".

—GOETHE.

पात्र—

बदहवासराय बी० ए०

झपसटराय—बदहवासरायका बाप

रसिकलाल—बदहवासरायका मित्र

रोज़नामचा अली—दारोगा

पात्री—

सुशीला—बदहवासरायकी स्त्री

मोहनी—रसिकलालकी स्त्री और सुशीलाकी बहिन

मिश्रानी—झपसटरायकी रसोइयादारिन, कई एक और औरतें

यह तमाशा पहले पहल गोंडेमें "अक़्लकी मरम्मत" के नामसे खेला गया था। इसलिये इसका नाम "अक़्लकी मरम्मत" भी पड़ गया।

As Acted by the P. L. D. CLUB, GONDA

On the 19th October, 1918.

1. Badhawas Rai—Mr. G. P. Srivastava B. A. LL. B. the Author
2. Jhapsat Rai—Mr. K. B. Lal.
3. Rasiklal—Mr. D. P. Srivastava "Shad" B. A. LL. B.
4. Roznamcha Ali—Mr. B. K. Mukerji B. A. LL. B.
5. Sushila—Mr T. N. Gupta.
6. Mohni—Mr. M. B. Srivastava.
7. Misrani—Mr. D. N. Sarkar B. A. LL. B.

नोक झोंक

-: उर्फ़ :-

अक्ल या अक्लकी मरम्मत

अङ्क—१

दृश्य—पहला झपसटरायका मकान

(बदहवासराय बी० ए० और बादको झपसटराय)

बद०—(अकेला)—मैं ग्रैजुएट, और मेरी स्त्री बेपढ़ी हुई, मैं फ़ैशनेबिल और वह फूहड़ ! मैं नयी रोशनीकी चकाचौंध जगमगाहट और वह पुरानी रोशनीकी धुन्धली टिमटिमाहट। फिर दिल मिले तो क्योंकर मिले? आपसमें प्रेम हो तो कैसे हो? हाय! अफ़सोस। क़िस्मत फूट गयी। दिलके सब मनसूबे मिट्टीमें मिल गये। मेरे बापने मेरी ऐसी शादी करके मेरी ज़िन्दगी ख़राब कर दी।

(हाथपर सर टेकके बैठा हुआ अफ़सोस करता है)

(झपसटरायका आना)

झप०—क्या कहें, आजकलके लड़कोंने तो हम बुड्ढोंकी

मिट्टी-पलीत कर दी है। उन्हें पढ़ा-लिखाकर क़ाबिल बनायें तो हम बेवक़ूफ कहलायें। न पढ़ायें तो बेवक़ूफ कहलायें। उनकी शादी कर दें तो बेवक़ूफ कहलायें न शादी करें तो बेवक़ूफ कहलायें। ग़रज़े कि हम हर हालतमें बेवक़ूफ कहलाते है। (बदहवासरायको देखकर) वाह! वाह! आपको देखिये। बी० ए० हुए। शादी हुई। घरमें बहू आई। मगर आपके चेहरेपर ऐसी मुर्दनी छाई है और आपने कुछ ऐसी रोनी सूरत बनाई है कि मालूम होता है कि ब्याह करके नहीं आये हैं बल्कि मुर्दा फूंकके लौटे हैं। (बदहवासरायके पास जा कर) क्यों बेटा, ख़ैरियत तो है? आख़िर सर झुकाये ऐसे क्यों बैठे हो?

बद०—(सर उठाकर झपसटरायको देखकर अलग) ख़ुद ही मेरे लहलहाते हुए अरमानोंकी जड़ काटी और ख़ुद ही अब मेरी ख़ैरियत पूछने चले है।

झप०—क्यों बात क्या है? कुछ कहो तो मालूम हो।

बद०—क्या कहूं? कुछ कहा नहीं जाता। जो दिलपर गुज़रता है वह बयान नहीं हो सकता।

झप० –आख़िर क्यों? क्या तुम्हारे मुँहमें ज़बान नहीं है?

बद०—अगर मेरे मुंहमें ज़बान ही होती तो मेरी ख्वाहिशोंका भला इतनी आसानीसे ख़ून होने पाता?

झप०—अयँ, यह क्या कहते हो?

बद०—जो दिलसे निकलता है।

भप०—यह ऊटपटांग बातचीत कैसी? क्या अदब वो लिहाज़का कुछ भी ख़्याल नहीं?

बद०—जब दिल जला तो उसीके साथ अदब व लिहाज़का ख़्याल भी जल भुनके ख़ाक हो गया, जब पिताके दिलमें बेटेके चैन व आराम, शौक़ व अरमानका कुछ भी ख़्याल न हुआ तो फिर बेटेके दिलमें पिताके अदब व लिहाज़का ख़्याल क्योंकर हो?

भप०- क्या क्या, क्या? क्या पढ़ाने-लिखानेका यही नतीजा है? क्या इसी दिनके लिये तुम्हें मैंने पाल पोसके इतना बड़ा किया है?

बद०—इस दिनके लिये नहीं। बल्कि उस दिनके लिये जिस दिन रस्म-रिवाज़ोंकी वेदीपर मेरा बलिदान हुआ है, मेरे अरमानोंका ख़ून बहाया गया है। मैं बकरेकी तरह पाल-पोसके बड़ा किया गया ताकि मेरा दाम ज़्यादे चढ़े और क़स्साइयोंके हाथ आसानीसे बिक जाऊँ।

भप०—उफ़! अब मैं ज़्यादे नहीं सुन सकता। बस, मालूम हुआ कि अंग्रेज़ीकी ऊंची तालीमने तुम्हारे होश-हवास, अक़ल और समझपर एकदम उल्टी झाड़ू फेर दी।

बद०—ग़ज़ब क्या? अब आपने मेरे मनोरथोंकी आवन्दे-;

रूपी फुलवारीको जलाकर ख़ाक कर दिया। मेरे अरमानोंको रौंद-गोंजकर कूड़ा कर दिया। मेरी शादी करके मेरी मिट्टी ख़राब कर डाली।

झप०—वाह रे आजकलका उल्टा ज़माना! करो भलाई और वह समझी जाती है बुराई। लड़कोंकी शादी अगर बाप न कर दे तो दूसरा कौन करने आयेगा?

बद०—मगर मैं अपनी भलाई-बुराई समझनेकी ख़ुद अक़्ल रखता था। मुझे अपनी क़िस्मत सुधारने या बिगाड़नेमें दूसरेकी मददकी ज़रूरत न थी।

झप०—मेरे होते हुए तुम्हें ऐसा ख़्याल करना तुम्हारी नादानी है।

बद०—क्यों? क्यों? क्या मेरे दिमाग़में अक़्ल नहीं है?

झप०—है, मगर वह बेकार है, क्योंकि उसकी मरम्मत दरकार है।

बद०—नहीं, हरगिज़ नहीं। मालूम होता है कि आप मुझे निरा दूध पीता बच्चा समझते हैं। इसका ख़्याल नहीं करते कि मैं ग्रेजुयेट हूं।

झप०—और मैं ग्रेजुयेटका बाप हूं। बस हो चुका। तुम्हारे इस बेहूदेपनको ज़्यादे देरतक बरदाश्त नहीं कर

सकता। ईश्वर न करे किसी बापको ऐसे लड़केका मुंह देखना नसीब हो।

(जाता है)

बद०—(अकेला) खफ़ा हो गये तो मेरी बलासे। मुझे इसकी अब परवाह नहीं है।

(मिश्रानीका आना)

मिश्रानी-छोटे बाबू, भोजन तैयार है।

बद०—उठाके फेंक दो। खाना नहीं खाऊंगा। (जाता है)

मिश्रानी—(अकेली) अररर! यह क्या हुआ!

(सुशीलाका आना)

सुशीला—मिश्रानीजी! मिश्रानीजी!

मिश्रानी—कहो बहू क्या है?

सुशीला—लालाजी आज क्यों इतने नाराज़ हैं?

मिश्रानी—और मैं तुमसे पूछती हूं कि छोटे बाबू क्यों इतने नाराज़ हैं?

सुशीला—ईश्वर जाने क्यों! मुझे नहीं मालूम, उनका तो नाकहीपर हरदम गुस्सा धरा रहता है।

मिश्रानी—नहीं, यह बात नहीं। जान पड़ता है कि आज बड़े बाबूसे छोटे बाबू लड़े हैं।

सुशीला—यह मेरे भाग्यका क़सूर है। (मुंह फेरकर आंसू पोंछती है)

मिश्रानी—अरे ! बहू यह क्या करती हो ? तुम भला क्यों आंसू बहाने लगी ?

सुशीला—कुछ नहीं। मैं ही अभागिन हूं। जिस दिनसे मेरे मनहूस पैर इस घरमें पड़े हैं, उसी दिनसे यहां एक न एक उपद्रव मचा ही रहता है।

(बदहवासरायका आना और सुशीलाका झिझकना और चल देना)

बद०—कौन सुशीला ! ठहरो, ठहरो ! न सुनोगी ?

मिश्रानी—क्यों छोटे बाबू, यह क्या अनीति करते हो ! मैंने बड़े बड़े घराने देखे हैं, मगर मैंने कहीं किसीको अपनी स्त्रीको सबोंके सामने इस तरहसे नाम लेकर निरादरके साथ पुकारते नहीं सुना है।

बद०—हुश ! बको मत ! आदमियोंके, घरानोंमें नहीं बल्कि जानवरोंकी संगतमें हमेशा रही हो। तुम इन बातोंको क्या समझो ?

मिश्रानी—कुछ हो, मगर इतना तो समझती हूं कि आप बहूका निरादर करते हैं।

बद०—मैं उसका निरादर करता हूं कि वह मेरा निरादर करती है ! मैं पुकारता ही रहूं और वह यों चली जाये ?

मिश्रानी—और नहीं तो क्या करती ?

बद०—जब मैं तुमको पुकारता हूं उस वक्त, तुम क्या करती हो ?

मिश्रानी—छोटे बाबू, नौकरनीकी बातोंसे स्त्रीकी बातोंकी बराबरी न कीजिये। क्योंकि नौकरनी और स्त्रीमें बड़ा भेद होता है।

बद०—यह सब फ़ज़ूल बातें मैं नहीं सुनना चाहता। जाओ, फ़ौरन उसको यहां भेजो।

मिश्रानी—वह इस समय यहां न आवेंगी !

बद०—क्यों ! इसकी वजह ?

मिश्रानी—क्योंकि बहूजी स्वभावकी सकुचीली हैं।

बद०—नहीं बोड़म है।

मिश्रानी—अत्यन्त भोली है।

बद०—बिल्कुल गावदी है।

मिश्रानी—निरी नादान है।

बद०—सख्त बेवकूफ है। बस बस, मैं उसकी तारीफ़ नहीं सुनना चाहता। जाओ, मैं कहता हूं जाओ, उसको यहां भेज दो।

(मिश्रानीका जाना)

बद०—मुझे मालूम हो गया। वह इन गंवार औरतोंकी

संगतमें खराब हो रही है। जब तक शिक्षा उसकी आंखें खोलेगी नहीं तब तक वह अपने और परायेको ठीक पहचान नहीं सकती। इसीलिये मैं उसको पढ़नेकी इतनी ताकीद करता हूं, मगर मेरी बात नहीं सुनती, नहीं सुनती। मिश्रानीजी!

(मिश्रानीका आना)

बद०—तुम्हें वहां बैठ रहनेके लिये भेजा था या उन्हें बुलानेके लिये।

मिश्रानी—क्या करती? वह नहीं आती हैं। यहां आनेमें शर्माती हैं।

बद०—क्यों, क्यों? मुझसे शर्म कैसी? क्या मैं कोई-पराया मर्द हूं?

मिश्रानी—मगर बहू-बेटियोंका यही ढंग होता है। परायेकी कौन कहे अपनोंके सामने भी आते वे झिझकती हैं।

बद०—आखिर मुझसे वह क्यों भड़कती है?

मिश्रानी—आपही बेचारीको भड़काते हैं तो वह क्या करें?

बद०—मैं भड़काता हूं? क्या मैं बब्बर हूं?

मिश्रानी—सच पूछिये तो बब्बर भी अपनी स्त्रीसे ऐसा व्यवहार नहीं करता?

बद्० — इसका क्या मतलब ?

मिश्रानी—मतलब वतलब तो कुछ नहीं जानती, मगर छोटे बाबू, इतना अलबत्ता जानती हूं कि डांट-डपटसे मन फटता है, मिलता नहीं है। अच्छा, चलिये रोटी खा लीजिये।

बद्०—नहीं, रोटी नहीं खाऊंगा।

मिश्रानी—सचमुच ?

बद्०—तो तुझे कहूं

मिश्रानी —(अलग बड़बड़ाती हुई जाती है) तो मुझपर क्यों बिगड़ते हैं ? बहूजी आवें और वही मनावें इसीकी भूख है तो यही सही।

(जाती है)

बद्०—(अकेला) डांट-डपटसे दिल नहीं मिलता। मैं मानता हूं! मगर पढ़ानेका इसके सिवाय दूसरा उपाय ही क्या है ? जबतक वह पढ़ेगी नहीं तबतक वह मेरे प्रेमका पात्र क्योंकर बन सकती है। इसीलिये तो इतनी ताकीद करता हूं, इतनी डांट-डपट करता हूं। फिर भी तो वह नहीं पढ़ती। मेरा कहना नहीं मानती। अब क्या करूं ? क्या खुशामद करूं ? अच्छा यह भी सही। आज यह भी करके देख लूं। पढ़ानेके लिये डाटूंगा, डपटूंगा, हाथ भी जोड़ूंगा और पैरपर भी गिरूंगा। जो बन पड़ेगा, सब कुछ करूंगा।

(सवीता आती है और मुंह फेरकर खड़ी होती है)

सुशीला—(मुंह फेरे हुए) रोटी तैयार है।

बद०—तो मैं क्या करूं ?

सुशीला—रोटी तैयार है।

बद०—उस तरफ तुम दीवालसे कह रही हो ? सच है, बेपढ़ी स्त्रियां किसी कामके लायक़ नहीं होतीं। इनको बात करनेका ढङ्ग भी नहीं आता। मैं इधर खड़ा हूं और आप उधर मुंह फेरके खड़ी हैं। वाह ! वाह ! न जाने तुम्हें कब अक्ल आयेगी, कब समझ होगी। इसीसे कहता हूं कि पढ़ो पढ़ो आदमी बनो। कहते कहते मेरी ज़बान घिस गयी मगर मेरे कहनेका असर तुम्हारे दिलपर न हुआ, न हुआ। अब तुम्हीं बताओ, तुम्हें किस तरह समझाऊं ? किस तरहसे कहूं कि मेरी बातोंका कुछ असर हो। क्या खुशामद कराना चाहती हो ? तो वह भी सही। अच्छा अब तो मानोगी......

(सुशीलाके पैरोंपर गिरता है। मगर सुशीला मुंह फेरे हुए रहती है। इसलिये उसको इस बातको कुछ खबर नहीं होती है।)

सुशीला—(अलग) अरे ! लालाजी इधर आ रहे हैं।

(झट घूंघट और लम्बा तान लेती है और बदहवासरायकी तरफ बिना देखे हुए जल्दी जल्दी दूसरी तरफसे निकल जाती है। बदहवासराय ज्योंका त्यों ज़मीनपर माथा नवाये पड़ा रहता है।)

बद०—अब मैं जबतक तुमसे वचन न ले लूंगा तबतक तुम्हारे पैरोंपरसे सर न उठाऊंगा।

(झपटराय आता है)

ऋप०—(चन्द्रकान्तरायको देखकर अलग) आहा हा ! जी खुश हो गया। कुछ हो फिर भी अपना ही बेटा है। मुझे दूर-हीसे देखकर अपने क़सूरोंकी माफ़ी मांगनेके लिये पहिलेहीसे मेरे पैरोंपर गिर गया। लड़का चाहे जितना क़सूर करे मगर जब वह इस तरहसे माफ़ी मांगे तो कौन ऐसा कठोर बाप होगा जो इसपर भी उसका क़सूर न माफ़ करेगा। वाह ! वाह ! शाबाश, बेटे शाबाश। तूने मेरे टूटे हुए दिलको जोड़ दिया। अब मुझे कोई रञ्ज नहीं, कोई ग़म नहीं। आहाहा !

चन्द्र०—(वैसे ही माथा नवाये हुए) मैं कबतक यों पड़ा रहूं ? क्या मेरी बातोंका अब भी कुछ असर न हुआ ?

ऋप० (प्रकट) हां, हां, हुआ। बेहद हुआ। उठो ! उठो !

चन्द्र०—नहीं, जबतक मुझे इतमिनान न होगा कि मेरी बातें मानी जायेंगी तबतक मैं सर न उठाऊंगा।

ऋप०—ज़रूर, ज़रूर, तुम्हारी बातें ज़रूर मानी जायेंगी।

चन्द्र०—मेरी क़सम ?

ऋप०—राम ! राम ! क़समकी क्या ज़रूरत, क्या मेरी बातपर एतबार नहीं है ? आओ, जल्दी उठो ताकि मैं तुम्हें अपने कलेजेसे लगा लूं।

चन्द्र०—और तुम्हें मैं अपने कलेजेके भीतर बैठाल लूं। बस, एतबार हो गया। अब आओ, गले लग जाओ प्यारी !

(झपसटराम बदहवासरायको गले लगानेके लिये बढ़ता है। मगर प्यारीका लफ्ज़ सुनकर चकराता है। उधर बदहवासराम उठकर अपने बापकी सूरत देखकर बहुत घबड़ाता है)

झप०—प्यारी ! यह क्या ?.

बद०—प्यारी ! छिः ! छिः ! यह तो मेरे बाप हैं।
(भाग जाता है)

झप०—(अकेला—बड़े गुस्सेमें)आयँ ! आयँ ! मुझसे मसखरापन ? मैं बाप न हुआ गोया हरदम बेवकूफ बनानेके लिये अच्छा खासा खिलौना हुआ। बदमाश कहींका। मुझीको उल्लू बनाता है। कमबख्त। जलेपर नमक छिड़कता है।······ मैं समझा। अब मैं समझा। यह बात ! बाहर शादीसे नफ़रत दिखायें। शादीके लिये बापसे लड़ें और झगड़ें और भीतर जोरूके तलवोंपर नाक रगड़ें। वाह रे ! आजकलके लौण्डो। हम बूढ़ोंको अच्छा बेवकूफ बनाते हो। रहो, कुछ परवाह नहीं। मैं इसका बदला अभी निकालता हूं। और तुम्हारी अक्लकी मरम्मत करता हूं। शुक्र है कि मेरा समधियाना भी इसी शहरमें है। अभी समधी साहबको बुलाता हूं और फौरन ही बहूको चुपचाप नइहर भेज देता हूं। बच्चाके कानों-कानतक खबर न होगी। हां नफ़रत है तो नफ़रत ही सही। अच्छा, मैं भी देखता हूं।

दूसरा दृश्य

सड़क

(यदुश्यामराय और रसिकलालका बातें करते हुए आना)

रसिक०—आहा हा हा ! यह ख़ूब रहा। आप अपनी पिताके सामने अपनी स्त्रीके पैरोंपर गिरे हुए थे। आहा हा हा !

यदु०—और वह स्त्री कमबख्त यहांसे चुपकेसे खिसक गई। मुझको इतना भी नहीं बताया कि पिताजी आ रहे हैं। वरना मैं होशियार न हो जाता ?

रसिक०—मगर यार, फिर यह मज़ा कहांसे आता ? आहा हा हा ! प्यारी बहूके स्त्रीके धोखेमें जब आप अपने पिताको लिपटानेको लपके होंगे तो भला उन्होंने अपने दिलमें क्या कहा होगा ? आहा हा !

यदु०—इसीसे मैं कहता हूं कि मेरी क़िस्मत फूट गई कि ऐसी बेवक़ूफ़ औरत मेरे गले मढ़ गई है।

रसिक०—अब तो न कहिये ऐसा। अब तो पल्ला आप-हीका भारी मालूम होता है।

यदु०—क्या मैं बेवक़ूफ़ हूं ?

रसिक०—इतना ज़बरदस्त सबूत मिलनेपर भी आपको,

इसमें शक है क्या ? मानिये या न मानिये, मगर सच पूछिये तो क़सूर आपहीका है ।

बद० मेरा क़सूर ? अजी जनाब मैं ग्रेजुएट हूं, मैं भला क़सूर कर सकता हूं ?

रसिक०—वाह ! वाह ! क्या काबुलमें गदहे नहीं होते ? अच्छा, आप ही बताइये उस बचारीका क्या क़सूर है ?

बद०- अव्वल तो वह मुझसे प्रेम नहीं करती ।

रसिक० तब क्या किसी औरको चाहती है ?

बद०—बस जनाब बस, मैं मज़ाक़ नहीं पसन्द करता । गो यह सही है कि मेरी स्त्री आपकी स्त्रीकी बहिन है । मगर आपको उसे गालियां देनेका कोई अधिकार नहीं है ।

रसिक०—वाह री ! आपकी तुनुक मिज़ाजी ! और ऊपरसे आप कहते हैं कि वह प्यार नहीं करती । स्त्री क्यों न प्यार करेगी ! पहिले मर्द प्यार करनेके क़ाबिल हो तो सही । एक अंग्रेज़ी मसल है कि—

"That man that hath a tongue, I say, is no man, if with his tongue he can not win a woman's heart"

यानी वह मर्द ही क्या जो अपनी ज़बानसे औरतका दिल न मोह सके ।

बद०---बशर्ते कि औरत पढ़ी-लिखी हो। इतना और कहो। नहीं तो वह बिलकुल ग़लत है, क्योंकि भैंसके आगे बीन बजाए और भैंस बैठी पगुराय।

रसिक०—अजी हज़रत, यह Shakespeare का कहा हुआ है।

बद०—तब तो यह और भी नहीं माना जा सकता।

रसिक०—क्यों ?

बद्०—क्योंकि वह ग्रेजुएट नहीं था।

रसिक०—ख़ैर! आप अपनी बताइये कि आप उसको प्यार करते हैं या नहीं ?

बद्०—मैं ? मैं प्यार करता ज़रूर, अगर वह पढ़ी होती तो।

रसिक०—क्या कहना है! अगर प्यार करनेकी आपकी यही शर्त्त है तो बेहतर है कि आप इस स्त्रीको नीलाम करके किसी आलिम फ़ाज़िल बुड्ढे ख़ब्बीस मौलानासे या किसी दक़ियानूसी पुस्तकालयसे अपनी निसबत जोड़िये। ईश्वर चाहेगा तो आपके सब मनोरथ सिद्ध हो जायेंगे। भला कहिये तो कि अगर प्यार करनेकी यही शर्त्त रहा करे तब तो ग़ज़ब ही हो जाय। बुड्ढी खूसट उस्तानियों और मिस्ट्रेसोंके मुक़ाबलेमें निरी नादान कमसिन लड़कियोंको कोई क्यों

पूछेंगे ? कमसे कम मेरी स्त्री तो कुछ भी पढ़ी नहीं है। मगर फिर भी हम दोनोंमें बड़ा प्यार और मुहब्बत है।

बद०—क्या ? मुहब्बत है ? और आपकी स्त्री बेपढ़ी है ?

रसिक०—जनाब।

बद०—अच्छा, अगर ऐसा ही है तो मुझे बता दो कि यह मुहब्बत क्योंकर हुई।

रसिक०—एक तरकीबसे।

बद०—वह तरकीब क्या है ?

रसिक०—एक वशीकरण मन्त्र।

बद०—वह मन्त्र कैसा है ?

रसिक०—बहुत सच्चा और बहुत छोटा है।

बद०—उसको मैं भी जानना चाहता हूं

रसिक०—मगर आपको बताना फ़ज़ूल है। आप उसपर विश्वास न लायेंगे।

बद०—नहीं, मैं विश्वास ज़रूर लाऊंगा। बता दो।

रसिक०—आप उसपर अमल न करेंगे।

बद०—नहीं, अमल करूंगा। बता दो।

रसिक०—मन्त्र नहीं बताया जाता।

बद०—मैं मिन्नत करता हूं। हाथ जोड़ता हूं, बता दो।

रसिक०—हां, हां, हाथ न जोड़िये। मैं बताता हूं। वह

मन्त्र है सिर्फ़ "अच्छा"। जो बात स्त्री कहे उसके जवाबमें बस कह दिया करे "अच्छा"। न कभी झगड़ा हो न लड़ाई। दिनोंदिन आपसमें प्रेम बढ़े। मुहब्बतका यों ख़ूब मज़ा मिले। मैं तो इसीपर अमल करता हूं। और आनन्दसे रहता हूं।

बद्र० – हां? क्या अगर मैं भी इसीपर अमल करूं तो मुझमें और मेरी स्त्रीमें मुहब्बत पैदा हो जायगी।

रसिक० - शर्तिया! हाथपर हाथ मारके कहता हूं। अफ़सोस है कि ऐसे अभागे देशमें पैदा हुआ हूं कि जहां किसी बातकी कुछ भी क़दर नहीं। न किसी काममें कोई कुछ मदद देता है और न हिम्मत दिलाता है। यहां तो लियाक़त और क़ाबिलियत भूखों मरने और घर तबाह करनेकी निशानी है। किसी दूसरे देशमें अगर होता तो इस Discovery (ईजाद) पर Newton से भी ज्यादे नाम पैदा करता और जो कहीं इसको पेटेन्ट Patent करा देता तो दमके दममें करोड़पति हो जाता। समझे जनाब। यह लाख रुपयेकी बात बता दी है आपको।

बद्र० - अच्छा, अब मुझे देर होती है। अब मैं जाता हूं और आज ही इस मन्त्रको आज़माता हूं। (जाता है)

रसिक०—अच्छा, जाइये जनाब। औरतोंके लिये जैसे उहुंक् वैसे मर्दोंके लिये "अच्छा"। यही तो प्रेममें दो मुख्य वशीकरण मन्त्र हैं, मगर अभी इनके समझनेवाले बहुत कम हैं॥

अङ्क—२

दृश्य पहला—झपसटरायका मकान।

(सुशीला और मिश्रानी)

मिश्रानी—बहूजी, तुम तो नाहक इतना मन भारी हुए हो।

सुशीला—मिश्रानीजी, देख तो रही हो घरका हाल। किसीको क्यों दोष दूं? मेरी क़िस्मत ही खोटी है। सभी मुझसे नाराज़ रहते हैं। सास-ससुरका यह हाल है और उनका वह हाल है। पढ़ती हूं तो यह लोग देख नहीं सकते और घरका कामकाज करती हूं तो वह सैकड़ों बातें सुनाते हैं। मैं क्या करूं? मेरा इस संसारमें कोई नहीं। (रोती है)

मिश्रानी—न, न, बहू, घबड़ाओ न। सबकी सासें ऐसी ही होती हैं। जब तुम भी कभी सास होना तो इसकी कसर अपनी बहूपर निकाल लेना। हां, हां, तुम्हारे भी कभी अच्छे दिन आयेंगे।

सुशीला—क्या आयेंगे? जो बीत रही है, मैं ही जानती हूं। जिधर जाती हूं, दुतकारी जाती हूं। बाततक तो कोई पूछता ही नहीं।

मिश्रानी—यह सब छोटे बाबूके कारण। वही ऐसे

है जभी तो और लोग तुम्हारे साथ ऐसा बर्ताव करते हैं। अच्छा है कि तुम्हारे भाई तुम्हें बुलाने आज आये हैं। दो एक दिन नइहरमें जब रहोगी तब तुम्हारा मन बहल जायेगा और यह सब रञ्ज दूर हो जायेगा।

सुशीला - रञ्ज दूर होगा या और भी बढ़ेगा? मुझे भइयाजी अपनी खुशीसे बुलाने नहीं आये हैं। बल्कि मैं यहांसे निकाली जा रही हूं और वह मुझे ले जानेके लिये ज़बरदस्ती आज बुलाये गये हैं। इस बर्तावपर मेरी और भी छाती फटती है। ईश्वर न करे किसीको मेरी तरह नइहर जाना नसीब हो।

मिश्रानी—यह बात है? अच्छा, तो क्या छोटे बाबू भी चाहते हैं कि तुम यहांसे चली जाओ?

सुशीला—(रोती है)

मिश्रानी—हां, हां, बहूजी, आंसू न ख़राब करो। मालूम होता है कि छोटे बाबूको यह बात बिल्कुल मालूम ही नहीं। नहीं तो वह कुछ न कुछ इसमें बाधा जरूर डालते। और तुम्हें अपमानके साथ इस तरह यहांसे जाने न देते।

सुशीला—हाय! मेरे मां बाप दिलमें क्या कहते होंगे कि इसने ऐसा कौनसा क़सूर किया जो ससुरालसे इस बुरी तरह दुतकारी गई। मेरी अब वहां कैसी आवभगत होगी? अब तो मैं यहां वहां दोनों जगहोंसे गई गुज़री।

मिश्रानी—आज छोटे बाबू भी न जाने कहां अटक रहे। दोपहरहीसे ग़ायब हैं। इस वक्त भी आ जाते तो भी काम बन जाता।

सुशीला—क्या काम बन जाता?

मिश्रानी—क्यों? तुम उनसे मिल लेती और कहती कि—

सुशीला—नहीं, नहीं, मैं उनसे अब मिलने नहीं जाऊँगी, बिना मिले ही यहांसे चली जाऊँगी।

मिश्रानी—नहीं बहूजी, ऐसा न कहो।

सुशीला—क्यों न कहूं। जब कलेजा धधक रहा है तब मुंहसे धुआं क्यों न निकले? चुपचाप सहते सहते तो मेरी जीवन ख़त्म हुई और अब...... [गला भर आता है और रोती है]

मिश्रानी—अच्छा, धीरज धरो। मलकिन आ रही हैं। हट चलो यहांसे।

दृश्य दूसरा

रसिकलालका मकान

[रसिकलाल]

रसिक०—(अकेला) हमपर सब डाह करते हैं क्योंकि सबके घरोंमें लड़ाई वखा फ़साद हुआ करता है और हमारे घरमें हरदम चैन ही चैन रहता है। हमारी स्त्री हमको प्यार करती है और हम अपनी स्त्रीको प्यार करते हैं। बड़े मज़े में ज़िन्दगी कटती है।

[पलंगपर बैठता है और मोहनी पान लेकर आती है]

मोहनी—लो पान।

रसिक०—तुम्हीं खिला दो।

मोहनी—नहीं, तुम मेरी उंगली काट लोगे।

रसिक०—तो बदलेमें तुम मेरी ज़ुबान काट लेना।

मोहनी—[पान खिलाती है] उफ़! आख़िर काट लिया न।

रसिक०—मेरा क्या क़सूर? तुम्हींने तो यह बात याद दिला दी। अच्छा तो तुम अपना बदला निकालो

मोहनी—मैं बाज़ आई।

रसिक०—नहीं, बदला लेना होगा।

मोहनी—नहीं,नहीं, मैंने तुम्हारा क़सूर माफ़ कर दिया।

रसिक०—नहीं, मैं माफ़ी नहीं चाहता। तुम्हें ज़बान काटनी होगी।

मोहनी—अच्छा, तो फिर लिये आती हूं सरौता।

रसिक०—सरौता? क्या ईश्वरके दिये हुए औज़ारके दांत सब घिस गये?

मोहनी—नहीं, वे इतने बड़े जुर्मकी सज़ा देनेके लिये असमर्थ हैं।

रसिक०—अच्छा, तो फिर नयनरूपी तीर कमान भाले बरछे, यह सब किस दिनके लिये धरे हैं?

मोहनी—जब सरौतेसे काम निकल जाये तो ये घातक हथियार क्यों निकाले जायें?

रसिक०—तो मैं बाज़ आया ज़बान कटानेसे। तुम मुझे माफ़ ही कर दो।

मोहनी—अब ग़ैरमुमकिन है।

रसिक०—यह और बना। क्या और कोई सज़ा नहीं है जिसमें यह सरौतेकी ज़रूरत न पड़े।

मोहनी—हां, है क्यों नहीं? जुरमाना है।

रसिक०—वाह! वाह! फिर क्या कहना है। बोलो जुरमानेमें क्या लोगी?

मोहनी—एक सोनेका कंगन।

रसिक०—अच्छा।

मोहनी—और कानोंके झुमके।

रसिक०—अच्छा।

मोहनी—और गलेका चन्द्रहार।

रसिक०—अच्छा।

मोहिनी—और पैरके पाज़ेब।

रसिक०—अच्छा।

मोहिनी—और नाककी कील।

रसिक०—अच्छा।

मोहनी—और रेशमीकी चोली।

रसिक०—अच्छा।

मोहिनी—और बनारसकी साड़ी।

रसिक०—अच्छा।""लाओ, ज़रा हाथों तुम्हारे ओंठ भी काट लूँ ताकि तुम भी कलके जुरमाना कर सको और मैं भी एकदम दिवालिया हो सकूं। (उठकर चूमनेके लिये आगे बढ़ता है)

मोहनी—(पीछे हटती हुई) बस दूरहीसे। हाय! राम! जाओ, यही तो नहीं अच्छा मालूम होता।

गाना

मोहनी—हटो हटो करो न ढिठाई दिन रतियां।

रसिक०—सुनो सुनो करो न रुखाई मानो बतियां।

मन लुभाय दिलरुबा, दे अधरका रस मुझे नरा।

मोहनी—छोड़ छैल गैल रोक ना।

लपट झपट करो न बलम लागूँ पइयां तोरी।

रसिक०—छलकी घतियां करो न जनियां

लागो छतियां मोरी।

मोहनी—हाय दइया मराकी चोलिया छाड़ो

भइयां टूटी चुड़ियां।

दृश्य तीसरा

फ़र्स्टरायका मकान

(बदहवासरायका आना)

बद०—कुछ हो। आज मैं "अच्छा" के सिवाय कोई शब्द ज़बानसे निकालूंगाही नहीं। देखूं तो सही कि इस वशीकरण मन्त्रमें कैसा असर है। आज इसका तजुरबा ही किये लेता हूं। वह सिर्फ़ मेरे वशमें आ भर जाये फिर तो मैं उसे अंग्रेज़ी, फ़ारसी, हिसाब सब एकदम पढ़ा डालूं। और यों उसे ग्रेजुएट बना दूं। तब हम दोनों दिन-रात अंग्रेज़ीमें बातें किया करें। राजनीति (Politics) पर बहसें हों। बड़े बड़े क़ानूनी मसले हल किये जायें। सच तो यों है कि सब बड़े प्यार व मुहब्बत और आनन्दसे ज़िन्दगी हम दोनोंकी कटे। मगर इतनी देर हो गयी। अब तक सुशीला न आई। वह आ रही है। मगर आज रंग बेढब मालूम होता है। त्योरियां चढ़ी हुई हैं।

(सुशीला गुस्सेमें भरी आती है। दोनों खड़े खड़े थोड़ी देरतक चुपचाप एक दूसरेकी तरफ़ ताकते हैं)

सुशीला—क्या मैं इसी तरह दिन-रात कुढ़ा करूं ?

बद०—अच्छा।

सुशीला—यही बात है तो मेरा जीनेसे मरना ही अच्छा।

बद०—अच्छा।

सुशीला—जब मेरी कोई ख़बर ही नहीं लेता तो ज़हर खाकर जान दे देना ही अच्छा।

बद०—अच्छा।

सुशीला—हाय राम! मेरा तो यों ही घुट घुटकर दम निकला जाता है।

बद०—अच्छा।

सुशीला—मौतकी इन्तज़ारी क्यों करूं! मैं ख़ुद ही न प्राण त्याग दूं?

बद०—अच्छा।

सुशीला—तो फिर आज ही इस प्राणको त्यागे देती हूं।

बद०—अच्छा।

सुशीला—अभी अभी जाकर मैं विष खाती हूं।

बद०—अच्छा।

[सुशीला गुस्सेमें जाती है]

बद०—(अकेला) या ईश्वर, यह 'वशीकरण मन्त्र' है या 'मौतकरण'? ऐसा न हो कि कहीं यह सचमुच ज़हर खा ले। अगर ऐसा हुआ तो उस कमबख्त रसिकलालकी मैं जान ले लूंगा। उसपर मुक़द्दमा चलाकर उसको फांसी दिलवा दूंगा। उसने क्यों ऐसे ख़ानमाक प्राणहरण मन्त्रको मुझे

वशीकरण मन्त्र कहके बतलाया ? या ईश्वर ! यह क्या हुआ ? यह रोनेकी आवाज़ क्यों आती है ?

[नेपथ्यमें औरत रोती है]

मिश्रानीजी भी रोनी सूरत बनाये इधर आ रही हैं। या ईश्वर ख़ैर कर।

[मिश्रानीका आना]

बद०—क्या हुआ मिश्रानीजी…

मिश्रानी—क्या कहूं ? बहूजी…

बद०—बोलो, बोलो। हां बहूजी……

[नेपथ्यमें औरतें फिर रोती हैं]

मिश्रानी—वह देखिये, सुनिये।

बद०—(रोता है) हाय ! सर्व्वनाश हो गया।

मिश्रानी—बहूजी विदा हो गयीं।

बद०—नहीं सच कहो।

मिश्रानी—हां हां, विदा हो गयीं।

बद०—हाय ! विदा हो गयीं ? इस दुनियासे एकदम विदा हो गयी ? सिधार गयी ? मुझे अकेले छोड़ गयी ? हाय ! जिस बातका धड़का था वह आख़िर हो ही गयी। (रोता है)

मिश्रानी—(अलग) बहूके जानेका इतना रंज है कि बाही तबाही बकने लगे।

बद०—अरे मिश्रानीजी, मुझे नहीं मालूम था कि बहूजी सचमुच......(रोता है)

मिश्रानी—(अलग) सुशीलासे यही मैं भी कहती थी कि छोटे बाबूको यह बात मालूम नहीं है (प्रकट) पहिले नहीं मालूम था न सही मगर जब आपको मालूम हुआ तब आपने क्यों नहीं......

बद०—हाय ! अफ़सोस ! देरमें मालूम हुआ। जब सब हो बीता तब मालूम हुआ। पहिले मैं अन्धा था। सुशीलाके गुण मुझे दिखाई नहीं देते थे। अब आंखें खुली हैं। जो होना था वह तो हो ही गया। अब आंखें खुलके क्या करेंगी ?

मिश्रानी—जब आपको बहूजीका इतना रञ्ज है तो आपने रोका क्यों नहीं ? बहूजी अपनी खुशीसे थोड़े ही...

बद०—हां हां, मेरे ही कहनेसे ऐसा हुआ। वह बेचारी निर्दोष थी। वह देवी थी। आज्ञाकारिणी देवी थी। पूजने-योग्य देवी थी।

मिश्रानी—धन्य भाग ! कि यह शब्द उस बेचारीके लिये आपके मुखसे सुनती हूं। मगर आप तो हमेशा बेचारी-को दुतकारा ही करते थे।

बद०—थूको, मिश्रानी थूको। मैं इसी लायक हूं। पहिले

मैं ही बेवकूफ़ था। मैं ही अन्धा था। उस समय मुझे दोष ही दोष दिखाई देते थे।

मिश्रानी—तभी तो वह आपके मतानुसार मूर्ख थी।

वद०—नहीं, मूर्ख नहीं, भोली थी।

मिश्रानी फूहड़ और गंवार थी।

वद०—निरी नादान थी।

मिश्रानी—गावदी थी।

वद०—सकुचीली थी।

मिश्रानी आपका कहना नहीं मानती थी।

वद०—नहीं नहीं, मेरा कहना तो सिर आंखोंपर धरती थी। मेरे ही कहनेसे तो······(रोता है)

मिश्रानी—अगर बहूजी आपकी बातें सुनने पातीं तो ··

वद०—हाय! यह ख़ुशक़िस्मती मेरे नसीबमें थी ही नहीं।

मिश्रानी—अगर आप चाहेंगे तो बहूजीसे बड़ी जल्दी भेंट हो सकती है।

वद०—हां मैं भी उससे मिलनेके लिये जल्दी कर रहा हूं। मैं भी जाकर अभी प्राण त्यागे देता हूं। मैं अब जीकर क्या करूंगा? यह घर अब मुझे काटे खा रहा है। यह रहकर मेरा दम घोंट रहा है। जब प्यारी थी तो प्यार न था, अब

प्यार है तब प्यारी नहीं। हाय! सुशीला तू कहां चली गयी? तेरे बिना यह संसार वीरान मालूम होता है। मैं भी तेरे पास आता हूं। मगर ज़रा उस हरामज़ादे रसिकलालको पहिले जहन्नुम पहुंचा दूं।...(बड़े ज़ोरोंसे पैर पटकता हुआ और दांत पीसता हुआ जाता है।)

मिश्रानी—(अचम्भेमें) यह क्या? स्त्रीके लिये इतना रञ्ज! कहाँ पहिले इतनी घृणा थी और कहां अब इतना प्यार!

(झपसटरायका आना।)

झप०—क्यों मिश्रानी, तुम्हें मालूम है बाबू साहब कहां इतने ऐंठते हुए गये हैं?

मिश्रानी—क्या कहूं बाबूजी। बहूजीकी बिदाईका रंज छोटे बाबूको बहुत है।

झप०—(बहुत खुश होकर) क्या कहा, रंज बहुत है? आहा हा! हा! अब देखें हज़रत कैसे कहते हैं कि क्यों ऐसी शादी कर दी। आजकलके लौण्डे चले हैं अपने बापहीको बेवकूफ़ बनाने।

मिश्रानी—बाबूजी, बहूजीको जल्दी बुला लीजिये। नहीं बड़ा अनर्थ होगा।

झप०—हर्गिज़ नहीं। मैं नहीं अब उसे बुलानेका। मैं इस लौण्डेको ठीक करके छोड़ूंगा।

मिश्रागी—ऐसा न कहिये। नहीं तो छोटे बाबूके दिलपर बड़ा भारी सदमा होगा। वह अभीसे कहते हैं कि बहूजीके बिना घर काटे खाता है।

झप०—हां? बहुत ठीक है आहा हा! हा! इसकी यही सज़ा है। हमी लोगोंको बेवक़ूफ़ बनानेके लिये ये लौण्डे ऊपरके मनसे शादीसे नफ़रत दिखाते हैं। झूठमूठकी धौंस जमाते हैं और भीतर ही भीतर जोरूकी ग़ुलामी करते हैं। जोरूके लिये जान देते हैं। अब हज़रतकी सारी हेंकड़ी किर-किरी हो गई। ख़ूब हुआ। आहा हा! हा!

[पटाक्षेप]

अङ्क—२

दृश्य पहला

सड़क

(झपलटरायका आना)

झप०—(अकेला) मैं खूब जानता हूं कि आजकलके लौण्डे जोरूके गुलाम होते हैं, मगर जिनकी बदौलत उन्हें जोरू नसीब होती है उनके ये कभी भी अहसानमन्द नहीं होते, बल्कि उल्टे उन्हें हमेशा बेवकूफ़ ही बनाया करते हैं। अपनी शादीसे नफ़रत दिखाते हैं। क्यों ? भोले-भाले मुझ ऐसे बूढ़ों-पर झूठमूठका रोब जमानेके लिये। यह सरासर पाजीपन नहीं तो है क्या ? मैं भी वह चाल चला हूं कि मेरे मैंजुपत्र साहब भी याद करते होंगे कि हां बाप बाप ही है। झट मैंने बहूको विदा कर दिया। हज़रतकी तुरन्त कलई खुल गई। नफ़रत उफ़रत सब ख़ाकमें मिल गई। बावले बने घूम रहे हैं। रात-सेही ग़ायब हैं। मैं जानता हूं जिस फ़िराक़में होंगे। अब मैंने क़सम खा ली है कि जब तक उनसे कहला न लूंगा कि शादीके लिये मैं आपका बड़ा अहसानमन्द हूं और वह सब नफ़रत मेरी बनावटी थी तबतक मैं बहूको घर हर्गिज़ न बुलाऊंगा। यह सामने कौन भिखारी आ रही है ?

झप०—क्यों मिश्रानी, आज यह सवेरे सवेरे कहां घूम रही हो ? कुछ रोटी पानीकी फ़िक्र है कि हम सबको आज व्रत रखानेवाली हो ?

मिश्रानी—जरा बहूजीको देखनेके लिये उनके नइहर चली गयी थी। इसीलिये देर हो गयी। वहींसे आ रही हूं।

झप०—यह बात है ? अच्छा तो कहो हमारे छोटे बाबूसाहब भी वहीं हैं। क्यों ज़रूर होंगे।

मिश्रानी—नहीं तो। क्या वह रातको लौटके घर फिर नहीं आये ?

झप०—अब हज़रतका जी घरपर कैसे लग सकता है ? जोरू घरमें होती तो आते भी। जहां जोरू होगी वहां वह भी होंगे।

मिश्रानी—बहूजी तो सुबह को ही रसिकलालके घर अपनी बहिनसे मिलने गयी हैं। यहांसे बुलौवा आया था।

झप०—तो हमारे ग्रैजुएट साहब भी ज़रूर रसिकलालके घर होंगे।

मिश्रानी . बाबूजी, मेरा कहना मानिये। बहूजीको बुला लीजिये।

झप०...वाह ! वाह ! बिना उस लौण्डेकी अकल ठीक किये हुए अब फिर कहीं ऐसी ग़लती कर सकता हूं ?

मिश्रानी—नहीं बाबूजी ऐसा न कीजिये। नहीं, ईश्वर न करे कि कुछ हो जाये। उनकी रुलाई देखकर मेरी छाती फटती थी।

झप०—वाह! वाह! हज़रत रोते भी थे। हा हा हा! जोरूकी बिदाईपर। देखो आजकलके लौण्डोंकी हालत। हा हा हा!

मिश्रानी—नहीं बाबूजी, हँसनेकी बात नहीं।

(इसके आगे आहिस्ते आहिस्ते कहती है)

(झपलटराय और मिश्रानी दोनों स्टेजके किनारेपर धीरे धीरे बातें करते हैं। और दूसरी तरफसे दारोगा रोज़नामचा अली और बद-हवासराय आते हैं।)

रोज़०—तो तुम और रसिकलाल, दोनोंने मिल करके मुसम्मात सुशीलाका ख़ून कर डाला?

बद०—हाँ! और मैं चाहता हूँ कि हम दोनोंको फाँसी हो।

रोज़०—ठहरो! ख़ून कहाँ हुआ? तुम्हारे बाप झपलट-रायके मकानपर?

बद०—जी हाँ! अरे मेरे बाप तो यह खड़े हैं।

(घबड़ाकर भाग जाता है)

रोज़०—[उसी तरह] और मुसम्मात सुशीलाको ज़हर

दिया गया था। क्यों? (पीछे ताककर) अयँ! मुखबिर गायब हो गया! किधर गया? [झपलटराय और मिश्रानीको देखकर] ओ! तुम लोग कौन हो?

(मिश्रानीका जाना)

झप०—मैं जनाब, झपलटराय हूं।

रोज़०—झपलटराय! अयँ? झपलटराय! [पाकेटसे नोटबुक निकालकर देखता है] अयँ! झपलटराय! आप ही बदहवासरायके बाप हैं?

झप०—जी जनाब! जी जनाब! आपने ख़ूब ही पहचाना।

रोज़०—अल्लाह! फिर क्या? आप तो मेरे पुराने दोस्त हैं। मुन्शीजी लाइये हाथ। वाह! वाह! आदाबर्ज़! मुन्शीजी! आदाबर्ज़!

झप०—आदाबर्ज़ जनाब।

रोज़०—आप लोग कभी दोनों हाथ जोड़कर पण्डितोंको पालागन करते हैं। वह किस तरह करते हैं?

झप०—यों—[दोनों हाथ जोड़ता है। वैसे ही रोज़नामचा झटसे उसके दोनों हाथ बांध देता है। और उसके बाद स्टेजपर अकड़ता हुआ टहलता है]

रोज़०—पकड़ लिया! गिरफ़्तार कर लिया! मुल- ज़िमको पकड़ लिया। ख़ूनीको पकड़ लिया, वाह रे हम!

झप०—या ईश्वर! यह कैसा अन्धेर! कैसा ख़ून? किसका ख़ून? किसने किया? कहां किया?

रोज़०—तुम्हारे मकानपर।

झप०—मेरे मकानपर!

रोज़०—तुम भी ख़ून करनेवालोंमें शरीक रहे होंगे। ज़रूर शरीक रहे होंगे।

झप०–मैं शरीक रहा हूंगा!

रोज़०—बेशक। क्योंकि तुम्हारे ही मकानपर ख़ून हुआ है।

झप०—अरे! किसका ख़ून हुआ है?

रोज़०—मुसम्मात सुशीलाका।

झप०—कौन उल्लूका पट्ठा कहता है।

रोज़०—तुम्हारा लड़का बदहवासराय।

झप०—अयँ! क्या उसने मुझे बेवक़ूफ़ बनानेकी कोई नई चाल सोची? क्यों जनाब, इस ख़ूनका कोई आपके पास सबूत भी है?

रोज़०—सबूत? सबूत? बड़ा भारी सबूत है।

झप०—क्या है?

रोज़०—यह मेरा रोज़नामचा।

झप०—रोज़नामचा?

रोज़०—हां हां हां, पूरे दर्जनभर आदमियोंको फांसी दिलानेके लिये यह अकेला काफ़ी है। बस, चलो, इधर मेरे साथ।

झप०—क्यों, किस लिये ?

रोज़०—क्योंकि तुम ख़ूनी हो। अगर ख़ूनी नहीं तो ख़ूनीके बाप हो। और अगर यह भी नहीं तो मुख़बिरेके भगा ले जानेवाले हो। समझे ? इसलिये तुम हर तरह मेरे मुलज़िम हो। चलो इधर।

झप०—हुज्जत बेकार है। मैं समझ गया। उस कमबख़्तने मुझसे बदला चुकानेके लिये और मुझे छकानेके लिये मेरे सर यह आफ़त खड़ी कर दी। ईश्वर न करे किसीका लड़का अैजुपट हो। मैं समझता था कि मैं उसका बाप हूं, मगर वह मेरा भी चच्चा निकला। ठीक है। जब लड़का अैजुपट हो जाता है तो बाप फिर बाप नहीं रहता बल्कि अच्छा ख़ासा गधा बन जाता है। या ईश्वर! किस मुसीबतमें फँसा।

(दोनोंका जाना)

दृश्य दूसरा

रसिकलालका मकान ।

(सुशीला और मोहनी)

मोहनी—बहिन, तुमसे मिलनेको मेरा बहुत जी चाहता था । कई एक दफ़े मैंने उनसे कहा भी था कि बहनोई साहब-से ज़रा कह दें कि कभी कभी मुलाक़ातके लिये तुम्हें भेज दिया करें । मगर वह ऐसे बातूनी आदमी हैं कि हर बातमें अच्छा कह देते हैं । लेकिन करते धरते कुछ भी नहीं हैं । इसलिये कल जब मुझे पता चला कि तुम नइहर आ रही हो तब मैंने उसी वक्त, कहला भेजा था ।

सुशीला—हां, मुझे मालूम हुआ था । और वैसे ही मैंने इरादा भी किया था कि सुबहको तुम्हारे यहां आऊंगी । आने-की तैयारी कर रही थी कि इतनेमें तुम्हारी डोली पहुंची । हां, जीजाजी कहां हैं ? दिखाई नहीं देते ?

मोहनी—आते ही होंगे, कहीं गये हैं । बहिन, ज़रा चलके मेहमानोंको बैठाओ । आज बहुतसे घरोंकी औरतें आयेंगी । मैंने तुम्हारे मिलनेकी खुशीमें अपनी सब सखी-सहे-लियोंको न्योता दे रक्खा है । तुम चलो, जबतक मैं इधर खाने पीनेका सामान ठीक किये लेती हूं ।

(सुशीलाका जाना)

गाना

मोहनी—आज आयेंगे लायेंगे सइयां मेरे,
साड़ी चोली कंगन वो झूमके ।
साड़ीको रंगके, पहनूंगी ढंगसे,
सखियोंमें बनके हां तनके चलूंगी मैं झूमके ।
ऐसी बांकी मोहनियां दुलहनियां बनूं,
सइयां भी प्यार करे चूमके ।

(रसिकलालका आना)

मोहनी—तुम आ गये ?
रसिक०—देख तो रही हो ।
मोहनी—क्यों, कंगन लाये ?
रसिक०—कंगन ?
मोहनी—हां, और झुमका ?
रसिक०—झुमका ?
मोहनी—हां, और चन्द्रहार ?
रसिक०—चन्द्रहार ?
मोहनी—हां, और पाज़ेब ?
रसिक०—पाज़ेब ?

मोहनी—हां, और कील और चोली और साड़ी ?

रसिक०—कील और चोली और साड़ी ?

मोहनी—हां हां, लाये कि नहीं लाये । बोलो ।

रसिक०—अजी क्या बोलूं ? कुछ समझमें आये तो बोलूँ भी ।

मोहनी—अयँ ! यह क्या कहते हो ? रातको तो तुमने एक एक चीज़का नाम लेके वादा किया था कि हां ला देंगे ।

रसिक०—हां हां, कहा होगा ।

मोहनी—कहा होगा कि कहा था ?

रसिक०—जो बात कुछ समझहीमें नहीं आ सकती उसके बारेमें मैं क्योंकर ठीक ठीक कह सकता हूं कि ऐसा ज़रूर ही हुआ था ।

मोहनी—आख़िर न समझमें आनेकी वजह ?

रसिक०—यही कि भैरवीके वक्त तुम शामकल्यानका राग छेड़ रही हो ।

मोहनी—मैं इस पहेलीका मतलब कुछ भी न समझी ।

रसिक०—देखो, रातकी बात रातके वक्त किया करो और दिनकी बात दिनके वक्त, तब तो सब कुछ समझमें आवे । वरना इस गड़बड़झालेमें भला कहीं कुछ समझमें आ सकता है ?

मोहनी—हाय! तो मैं इतने मेहमानोंके सामने निरी कङ्गालिन भिखारिनकी तरह रहूं?

रसिक०—तो क्या आज कोई Fancy dress ball है जो ख़ाहमख़ाह लिल्ली घोड़ी बनना चाहती हो?

मोहनी—अच्छा, ऐसा ही है तो तुमको क्या?

रसिक०—वाह! वाह! तब तो मेरा असली फ़ायदा हो। घर टिकट लगाके आमदनी कर लूं।

मोहनी—बस, बस, बोलियां न बोलो। तुम्हें हँसी सूझती है और मुझे रुलाई आती है।

(दूर मुँह फेरकर खड़ी होती है)

रसिक०—आख़िर क्यों?

मोहनी—यही सादे कपड़े पहनके अपनी सखी सहेलियोंके सामने कौनसा मुंह लेकर जाऊं?

रसिक०—अच्छा, तो अपनी एवज़ीपर मुझे वहां भेज दो।

मोहनी—मुझसे तुमसे कोई सरोकार नहीं। बस, अकेली रहने दो।

रसिक०—अच्छा, यहां तो आओ। सरोकार नहीं है तो न सही।

मोहनी—तुम्हारे पास आनेवालेपर...

रसिक०—हां, हां, कोसो मत।

मोहनी—या ईश्वर! मैं मर जाती तो अच्छा था।

रसिक०—तो मैं जीके क्या करूंगा? मैं भी मर जाता तो अच्छा था।

मोहनी—[घूमकर] खबरदार, ऐसी बात मुंहसे मत निकालो।

रसिक०—देखो, मुझसे तुमसे कोई सरोकार नहीं। मेरी बातमें मत बोलो। या ईश्वर-

मोहनी—फिर---

रसिक०—या ईश्वर---

(मोहनी दौड़कर रसिकलालका मुंह बन्द करती है)

(नेपथ्यमें—"कहां है कम्बख्त रसिकलाल।")

रसिक०—अर्य! यह कौन है?

(नेपथ्यमें—"तेरी मौत। तेरी मौत।")

रसिक०—लो आ गई। कहते रहे कि भैरवीके वक्त, श्यामकल्यान न छेड़ो। चलो, चलो, भीतर चलो। वह आ गयी।

मोहनी—हाय! नहीं, नहीं, मैं तुम्हें न छोड़ूंगी।

रसिक०—चलो चलो, यहांसे, कोई पागल है, यह देखो पहुंच गया, भागो।

मोहनी—हाय! हाय! दौड़ो लोगो......(भीतर जाती है)

(बदहवासरायका आना और उसके बाद मिश्रानीका चुपचाप आना ।)

रसिक०—यह आप ही इतने ज़ोर-शोरसे आ रहे हैं ।

बद०—हां, हां, मैं ही आया हूं तुम्हारा खून पीनेके लिये आया हूं । तुम्हें मार डालूंगा । जानसे मार डालूंगा ।

(मोहनी और सुशीलाका आना और पीछे छिपकर देखना)

रसिक०—तुम्हें भाई आज क्या हो गया है ?

बद०—बताऊं क्या हो गया है ? बताता हूं ।

(रसिकलालको मारनेके लिये झपटता है । मिश्रानी दोनोंके बीचमें घुसकर लड़नेसे रोकती है । और पीछेसे सुशीला बदहवासरायका और मोहनी रसिकलालका हाथ पकड़कर अलग अलग खड़ी होती है ।)

बद०—(सुशीलाको बिना देखे हुए उसी जोशमें) तुम्हींने मेरी प्यारी सुशीलाका खून कराया है । तुम्हींने वह मुझे प्राणघातक मन्त्र बताया था । तुम्हींने मेरी जानसे भी प्यारी स्त्रीको मरवा डाला है । मैं तुम्हें बिना फांसी दिलवाये थोड़े ही छोड़ूँगा ।

(रंगनाथका असली दारोगा और झपटटरायका आना और सुशीला और मोहनीका हाथ छोड़कर पीछे हट जाना)

झप०—लीजिये दारोगा साहब, रसिकलालका यही मकान है, अब मेरी जान छोड़िये ।

रोज़०—ज़रा सब्र कीजिये। जब आपको फाँसी हो जाये तो एकदम आपको छुट्टी दे दूं।

बद्र०—आइये दारोगा साहब, पहिले खूनीको गिरफ्तार कर लीजिये तब आगे कुछ बातचीत कीजिये। लीजिये, मैं पकड़े हुए हूं।

रसिक०—यह कैसा गड़बड़झाला है। कुछ समझमें नहीं आता।

(रोज़नामचा अली रसिकलाल और बद्रीनारायण दोनों को एक साथ बाँधता है।)

रोज़०—(स्टेजपर फुदकता टहलता हुआ) पकड़ लिया। दोनोंको पकड़ लिया। जानपर खेलकर पकड़ लिया। वाह रे हम, बहादुर हों तो ऐसा हो।

सुशीला, मोहनी, मिश्रानी—यह कैसा अन्धेर है?

रसिक०—आखिर आपने मुझे क्यों गिरफ्तार किया?

रोज़०—तुम लोगोंने मुसम्मात सुशीलाको ज़हर देकर मार डाला है।

बद्र०—जी हाँ।

सुशीला—[पीछे खड़ी हुई आगे] यह कैसा तमाशा है। मेरी ज़िन्दगीमेंही मुझे लोग मुर्दा बताते हैं।

रसिक०—झूठ, झूठ, सरासर झूठ!

वाह रे हम, बहादुर हो तो ऐसा हो। (पृ० ६८)

सुशीला—[अलग] बिना शर्मको छोड़े अब काम नहीं चलता ।

झप०—बेशक, बिल्कुल झूठ ।

सुशीला—[सामने आकर] मैं भी इसकी ताईद करती हूँ ।

बद०—कौन ? मेरी प्यारी सुशीला ! जीती जागती सुशीला !

राज०—मक़तूलकी लाश । मुजरिमा !

झप०, रसिक०—हमारी सफ़ाईका सबूत ।

झप०—(बद्रीप्रसादसे) ले बाबा अपनी जोरू ले । और अपनी ऐसी-तैसीमें जा । मैं बाज़ आया तेरी अक्ल की मरम्मत करनेसे । मुझे ख़ुद अब अपनी ही अक्लकी मरम्मत दरकार है ।

मिश्राजी—बाबूजी, मैंने पहले ही कहा था कि बहूको बुला लीजिये । वरना कुछ न कुछ बखेड़ा ज़रूर होगा ।

बद्र०—प्यारी मिली और प्यार भी आया । उफ़ ! ओ ! मन्त्रने इतनी देरके बाद असर दिखलाया । [रसिकलालसे] भाई रसिकलाल ! मुझे माफ़ करो । सचमुच तुम्हारा 'अच्छा' नामक वशीकरण मन्त्र बिल्कुल सच्चा है । मगर इसके तजुर्बेमें बड़ा सब्र चाहिये ।

रसिक०—क्यों दारोगा साहब, अब तो हम लोगोंको आज़ाद कीजिये।

रोज़०—वाह! वाह! अब तो ख़ूनका सबूत और भी पक्का हो गया।

रसिक०-कप०—यह क्योंकर?

रोज़०—मक़तूलकी लाशका पता चल जानेसे।

रसिक०—लाश! कहाँ है लाश?

रोज़—[सुशीलाकी तरफ़] यह क्या सीधी खड़ी है।

कप०—यह लाश है? इसका सबूत?

रोज़०—यह रोज़नामचा।

कप०—क्या अब भी आपका रोज़नामचा दुरुस्त नहीं हुआ?

मिश्रानी—अभी दुरुस्त हुआ जाता है।

(अन्दर आती है)

बद्०—दारोग़ा साहब, माफ़ कीजिये। मुझसे बेशक ग़लती हो गई, जो आपको इतनी तकलीफ़ दी। इस मामलेको अब ख़तम कीजिये।

रोज़०—वाह! वाह! क़तलका जुर्म बिना दो चारको फांसी दिलवाए थोड़े ही ख़तम हो सकता है। मैं अब उसको भी (सुशीलाकी तरफ़) अपने क़ब्ज़ेमें करता हूं।

बद०—क्यों ?

रोज़०—यह बकसमें बन्द करके डाक्टरी मोयाइनेके लिये भजी जायगी। डाक्टर साहब इसको चीर-फाड़कर पता लगायेंगे कि इसे कौनसा जहर दिया गया था।

झप०—दुरुस्त है।

बद०—नहीं, नहीं, ऐसा ग़ज़ब भी न कीजियेगा।

[मिश्रानीका बहुतसी औरतोंके साथ झाड़ू लेकर आना।]

रोज़०—(सुशीलाकी तरफ बढ़ता हुआ) हम नहीं मान सकते, खूनके मुक़द्दमेमें लाशका चीरा जाना और मोयाइना होना ज़रूरी है।

मिश्रानी—ज़रा ठहरिये, दारोग़ाजी।

रोज़०—क्यों ? यह हाथमें क्या है ?

मिश्रानी—यह आपकी अक्लकी मरम्मत करनेका और रोज़नामचा दुरुस्त करनेका मसाला है। मारो बाहिनो मेहमान आई हो आज बड़े भागसे।

[सब औरतोंका मिलकर रोज़नामचा अलीको मारना। रसिकलाल, बदहवासराय और झपटदासका बन्धनसे मुक्त होना।]

गाना

स्त्रियां०—मारो बाहिनो मारो बाहिनो करो मरम्मत इसकी।
रोज़०—तौबा ! तौबा ! कैसी आई सरपर यह कमबख्ती ?

रसिक०—क्यों दारोगा साहब, अब तो हम लोगोंको आज़ाद कीजिये।

रोज़०—वाह! वाह! अब तो ख़ूनका सबूत और भी पक्का हो गया।

रसिक०- रूप०—यह क्योंकर?

रोज़०—मक़तूलकी लाशका पता चल जानेसे।

रसिक०—लाश! कहां है लाश?

रोज़ -[सुशीलाकी तरफ़] यह क्या सीधी खड़ी है।

रूप०—यह लाश है? इसका सबूत?

रोज़०—यह रोज़नामचा।

रूप०—क्या अब भी आपका रोज़नामचा दुरुस्त नहीं हुआ?

मिश्रानी—अभी दुरुस्त हुआ जाता है।

(अन्दर जाती है)

बद०—दारोगा साहब, माफ़ कीजिये। मुझसे बेशक ग़लती हो गई, जो आपको इतनी तकलीफ़ दी। इस मामलेको अब ख़तम कीजिये।

रोज़०—वाह! वाह! क़तलका जुर्म बिना दो चारको फांसी दिलवाए थोड़े ही ख़तम हो सकता है। मैं अब इसको भी (सुशीलाकी तरफ़) अपने क़ब्ज़ेमें करता हूं।

बद०—क्यों ?

रोज़०—यह बकसमें बन्द करके डाक्टरी मोयाइनेके लिये भेजी जायगी। डाक्टर साहब इसको चीर-फाड़कर पता लगायेंगे कि इसे कौनसा जहर दिया गया था।

रूप०—दुरुस्त है।

बद०—नहीं, नहीं, ऐसा ग़ज़ब भी न कीजियेगा।

[मिश्रानीका बहुतसी औरतोंके साथ झाड़ू लेकर आना।]

रोज़०—(सुशीलाकी तरफ बढ़ता हुआ) हम नहीं मान सकते, ख़ूनके मुक़द्दमेमें लाशका चीरा जाना और मोयाइना होना ज़रूरी है।

मिश्रानी—ज़रा ठहरिये, दारोग़ाजी।

रोज़०—क्यों ? यह हाथमें क्या है ?

मिश्रानी—यह आपकी अक़्लकी मरम्मत करनेका और रोज़नामचा दुरुस्त करनेका मसाला है। मारो बहिनो मेहमान आई हो आज बड़े भागसे।

[सब औरतोंका मिलकर रोज़नामचा अलीको मारना। रसिकलाल, बद्दहवासराय और रूपसहायका बन्धनसे मुक्त होना।]

गाना

स्त्रियां०—मारो बहिनो मारो बहिनो करो मरम्मत इसकी।

रोज़—तौबा ! तौबा ! कैसी आई सरपर यह कमबख़्ती ?

झग०, रसिक०——जान मेरी सासत से अब छूटी ।

बद०——चमकी मेरी क़िस्मत जो भी फूटी ।

रोज़०——टाँगें टूटीं सबकी हड्डी टूटी ।

अब तो छोड़ो मेरी आदत छूटी ।

स्त्रियाँ०——मारो चाहिनो,

झग०, बद०, रसिक०——Once more

स्त्रियाँ०——करो मरम्मत इसकी ।

[पटाक्षेप]

उर्फ़ अच्छा

तीसरा खण्ड

(पुरुष-भाव)

"काबेवालोंसे जो पूछी मैंने मञ्ज़िल यारकी।
बुतकदेकी सिम्त चुपकेसे इशारा कर दिया॥"

नोक-झोंक

प्रथम दृश्य

(१) चुम्बन—(यह लेख १९१७ में लिखा गया और उसी साल प्रयागके 'मर्यादा' में प्रकाशित हुआ। इसका अनुवाद गुजरातीमें बम्बईके मासिकपत्र 'वीसमी सदी' के सम्पादक श्रीमान् हाजी मुहम्मद अल्लारखिया शिवजीने किया और उसको 'वीसमी सदी' में सचित्र १९१८ में प्रकाशित किया।)

द्वितीय दृश्य

२ झूठमूठ—(इसका पहिला परिच्छेद १९१७ में लिखा गया और दूसरा और तीसरा १९१८ में। यह लेख नीमाचके 'चन्द्रप्रभा' और उसके बाद काशीकी गल्पमालामें प्रकाशित हुआ।)

चुम्बन

"जुदा है नेमते दुनियासे लज़्ज़त बोसये लबकी ?
वह जोगी हो गया जिसने यह मोहनभोग चक्खा है।"

वाहरी क़िस्मत ! देखते ही देखते क्यासे क्या हो गया। पापीको मुक्ति हुई। अधर्मीने स्वर्ग पाया। नास्तिकको ईश्वर मिला। कंगालने ख़ज़ाना लूटा। और मुझे अभी अभी वह चीज़ मिली है कि मैं स्वर्गके मज़ेको भूल गया। क़ारूंकी दौलतपर लात मार दी। दुनियाकी बादशाहतकी चाहको भाड़में झोंक दिया। दिलकी तरंगें मौजें मार रही हैं। कलेजा बांसों उछल रहा है। नस-नसमें ख़ुशीकी बिजली दौड़ रही है। बस ! बस ! ईश्वर ठहर, ठहर। दुनियाकी सारी खुशी मुझीको दे डाली। मेरे सम्हाले नहीं सम्हलती। मैं बावला हो रहा हूं। मैं पागल हुआ जाता हूं। न रोको, मेरी उमंगोंको न रोको। कुछ छलककर बाहर निकल जाने दो। दिलकी भभक निकाल लेने दो। नहीं, मैं मारे खुशीके मर जाऊंगा। मरे जीनेकी ख़ातिर मक्के

दो। जी भरके बक लेने दो। सुनो, सुनो, न सुनो परवाह नहीं। दीवाना हूँ, दीवाना ही सही। पागल हूँ, पागल ही सही। मुझे यह पागलपन मुबारक! ईश्वर करे हमेशा यह क़ायम रहे। दुनियाकी ऐसी तैसी। समाजकी ऐसी तैसी। जातपांतकी भी ऐसी तैसी। मुझे किसीकी परवाह नहीं। न दौलत चाहिये, न इज़्ज़त। न ऐशोआराममें मतलब है, न नामसे ग़रज़। मैं पा गया, सब कुछ पा गया। मुझे अब कुछ नहीं चाहिये। इसके आगे मैं मुक्तिको कौड़ियोंके मोल बेचता हूं। ईश्वरको भी एक दम भुला देनेके लिये तैयार हूं। चाहे पापी नहीं पापियोंका गुरुघण्टाल कहो। जो चाहो सज़ा दो। भुगत लूंगा। आंखें लड़ाकर दिल चूर चूर करा दो। कोमल बाहुपाशसे मेरी मुश्कें बन्धा दो। ज़ुल्फ़के कोड़ोंसे मेरी धज्जियां उड़ा दो। तेग़ अबरूसे मेरी बोटी बोटी कटवा दो। चाहे 'ज़नख़दां' में फंसवा दो। सब मञ्जूर। मगर ख़बरदार मेरे ओंठोंको उंगली न दिखाना। ओंठोंने 'पारस' छू लिया। मुंहने अमृत पी लिया। यह ओंठ भी अब वह ओंठ नहीं रहे। इनपर अब मैंने सारे जहानको न्योछावर कर दिया।

क्यों? यह सवाल मेरे चेहरेकी चमकसे पूछो। मेरे दिलकी धड़कनसे पूछो। मेरी बेसुधीकी हालतसे पूछो। या ख़ुद मेरे ओंठोंकी नमीसे पूछ लो।

चुम्बन

मुझसे क्या पूछते हो ? मारे मिठासके मुंह बंधा जाता है। खुशीके नशेमें ज़बान अलग बहक रही है। बस, कुछ न पूछो। मुझे अपने ओंठ चाटने दो। मेरे मज़े को मत बिगाड़ो। आह ! उन दिनोंकी याद मत दिलाओ। जब—

"हवस गुलकी कभी मिस्ले अनादिल हम भी रखते थे।
कभी था शौक़ गुल हमको कभी दिल हम भी रखते थे।"

नई उमंग और नई जवानी और उसपर सावनका महीना ! क्या कहना है। इधर मस्तीका रङ्ग, उधर सब्ज़ीकी बहार। इधर दिलमें ताज़गी, उधर हरियालीका लहलहाना। इधर तबीयतकी तेज़ी, उधर हवाकी शोख़ी। इधर शौक़की छेड़-छाड़, उधर पानीकी बौछार। इधर जोशका उमड़ना, उधर घनघोर घटा। और बाबू ज्वाला प्रसाद 'बर्क़' के जादू-भरे लफ़्ज़ोंमें --

"बादे सहरी चली जो सनसन,
उभरा हर शाख़ गुलका जोबन।
सग़ोंमें हुई उमंग पैदा,
नन्ही कलियां हुई हवैदा।
छेड़ा जो सबाने कसमसाईं,
कुछ कुछ दबे ओंठों मुस्कुराईं।

फिर गुल यह नसीमने खिलाया,
बढ़कर पहलूमें गुदगुदाया ।
सब मारे हँसीके खिलखिलाई,
फूलें न वह जामेंमें समाई ।
बाछें गई खिल खुशीके मारे,
दम फूल गया हँसीके मारे ।
खुशबू तुरन्त दहनसे निकली,
इतराई हुई चमनसे निकली ।
कुछ ऐसी दिमागमें समाई, सारे गुलको हवा बताई ।
अठलाती हुई चली अदासे, चुहलें करती हुई हवासे ।
बादल डरते हवासे भागे, बातें करते हवासे आगे ।
टकराए पहाड़से कहींपर, झूमके बरस पड़े कहींपर ।

हां एक तो सावन यों ही सुहावन और फिर गुड़ियोंका दिन, मौसिमकी यह अनोखी छटा और मेलेमें परियोंका प्यारा जम-घटा । कहीं छुनछुन, कहीं छमछम । कहीं शोखी, कहीं चुहल । कहीं लपझप, कहीं छेड़छाड़ । कहीं मीठी झिड़की, कहीं सुरीली हँसी । कोई अञ्चल सम्हाल रही है, कोई घूँघट निकाल रही है । कोई 'मुन्नी' को डांट रही है, कोई 'लल्लन' को फटकार रही है । कोई खिलौनेवालोंसे उलझ रही है । कोई गुड़िया फेंक रही है । फेंकते देर नहीं कि उसको लड़कोंने

तड़ातड़ पीटके धर डाला। किसीने ज़बरदस्ती गुड़िया छीन ली, तो कोई चौंकके पीछे हटी। कोई मुस्कुराके अलग जा खड़ी हुई। कोई झिड़कने लगी और कोई कोसने लगी।

"ताके किस मजहबीको किसको घूरे" जो है बस ईश्वरकी दोआरसे बला की है। इसी तरहसे नज़र चारों तरफ़से फिसलती हुई आख़िरमें एक झुरमुटमें जा अटकी। नज़र पड़ते ही टकटकी बंध गई, वाह! वाह!

वह बूटासा प्यारा क़द। यही जी चाहता है कि गोदमें उठाकर छातीसे लगा ले। वह चूमने क़ाबिल मुँह, वह अनोखे बांकपन, वह नोकझोंककी अदाएं कि बस खड़ा तमाशा देखा करे। एक हाथमें छोटीसी छड़ी है और उसमें कई एक बेलेके हार पड़े हुए हैं।

"सब लोग जिधर वह है उधर देख रहे हैं।
हम देखनेवालोंकी नज़र देख रहे हैं॥"

सैकड़ों नज़रें एक टक इसी ओर लगी हुई हैं। एक एक नज़रमें हज़ारों अरमान हैं तो लाखों ख़याल हैं।

सारा मेला यहीं टूटा पड़ता है। पैसेमें दो दो मालायें हाथों हाथ बिकती चली जा रही हैं। नवजवान लड़के, बूढ़े-बच्चे, सभी ख़रीद रहे हैं। बेंचनेवाले बेचारे खाली मोल-

तोल हो करके चले जाते हैं। ख़रीदनेका बहाना है और छेड़छाड़का मज़ा। लीजिये, अब कुल चार मालायें रह गईं। इतनेमें एक निर्दयीने ज़बरदस्ती एक पैसेमें उनसे तीन हार छीन लिये। लड़कीका चेहरा तमतमा उठा। और वह कुछ कहनेहीवाली थी कि उसने एक घुड़की बताई और चलता बना। वह बेचारी सिटपिटाकर रह गई और उसकी आंखोंमें आंसू छलक आए।

अब यह एक माला पौन पैसेकी, जोड़ा तो टूट ही गया। किसके पास धेलेकी कौड़ियां हैं? अगर हों भी तो क्या? अब तो भाव बिगड़ ही गया। पैसेकी तीन आंखोंके सामने बिक चुकी। अब भला इस आख़िरी छूटी-छटाई मालाको धेलेपर भी कौन पूछे? लोग तितर-बितर हो गये। भीड़ छट गई, मैं भी नज़र बचाकर आड़में अलग जा खड़ा हुआ।

लड़कीके बड़े बड़े भाव बन्द हो गए। मगर उसकी आख़िरी माला न बिकी। शामकी अंधियारी शुरू हो गई। लड़की अब कुछ कुछ परेशान हो चली आसपासके गुज़रनेवाले लोगोंसे खुद जा जाकर कहने लगी कि "धेलेकी माला ख़रीद लो" मगर अफ़सोस! कौड़ियां किसीके पास न निकलीं। कई एक दफ़े जीमें आया कि मैं सामने जाकर धेलेके बजाए पैसेको माला ख़रीद लूं और उसे यों इस मुसीबतसे छुटकारा

"लो अपनी मन्ताका सार" (पृ० ८१)

हूं। मगर वक़्तको ख़ूबी कि जेबमें न पैसा था न कोई रेज़ुकारी, थे भी तो कम्बख़्त रुपये। उन्हें कहां भुनाऊं? पासमें कोई सर्राफ़ भी नहीं। लड़कीके पास इतने पैसे भला कहां होंगे? और सर्राफ़की खोजमें कैसे जाऊं? नज़र हटती ही नहीं तो पैर कब उठाए उठेंगे? दिल मसोसके रह गया। इसी कसमसाहटमें था कि मेरे कानोंमें यकायक यह सुरीली आवाज़ आई, "धेलेकी माला लोगे?"

मैं चौंक पड़ा और सामने ही किसीको देखकर न जाने मेरी कैसी हालत हो गई। आंख लड़ते ही दिल उछल पड़ा। तमाम बदनमें एक बिजलीसी झनझनाहट फैल गई बौखलाकर मैंने उसके नाज़ुक हाथोंसे माला ले ली। और यह कहकर कि "लो अपनी मालाका दाम" मैंने घबड़ाहटमें कुछ अपनी जेबसे निकाला और उसे देकर वैसे ही न जाने मैं भीड़में किस तरफ़ ग़ायब हो गया। मुझे इन बातोंका कुछ भी ख़्याल नहीं।

* * * *

गुड़ियोंके मेलेको बीते हुए एक रोज़ दो रोज़ नहीं, बल्कि कई महीने बीत गए। तो भी दिलसे उस दिनकी बात हज़ारों कोशिशें करनेपर भी न भूली। तबीयतमें एक अजीब बेचैनीसी रहने लगी। उस दिन जब मेलेसे लौटा था, मेरे

हवास ठिकाने न थे। बार बार मालाको चूमता था। और दिल ही दिलमें खुश होता था। कभी हंसते हँसते उछल पड़ता था। कभी, न जाने, क्या क्या बकने लगता था। खुशी सिर्फ रातहीभर रही उसके बाद जो हालत हुई है उफ! ईश्वर न करे किसी दुश्मनकी भी हो।

दुनियासे मुंह चुराना। जङ्गलों और सुनसान मैदानोंकी खाक छानना। दिनभर आहें भरना तो रात रातभर तड़पना। हर रोज़ मेलेके मैदानमें जाना, जहां कभी परियोंका जमघटा था और अब मसानकासा सन्नाटा छाया रहता था। और वहां जाकर बैठे बैठे रोना। यही रोज़का काम था। आह! किस फुलवारीका फूल है वह और किस फूलकी कली है वह, यह भी तो नहीं मालूम। न घर मालूम है और न नाम मालूम है। उसे ढूंढने किस तरफ़ निकलूं? इतने बड़े शहरकी गली गली छान डाली। मगर वह सूरत फिर न दिखाई पड़ी। देखना तो दरकिनार, कहीं उसके पांवकी गर्दतक न मिली। नहीं नहीं, देखा है। हर रोज़ देखता हूं। सोते उठते बैठते हरदम देखता हूं। कानोंमें उसकी सुरीली आवाज़ अब भी गूंज रही है।

कभी अपनी बेवक़ूफ़ीपर मैं अपनेको बहुत बुरा-भला कहता कि अरे! कमबख्त, तू देखनेहीके लिये इतना बेचैन है

तो तूने उसे उसी रोज़ दिल भरके क्यों नही देख लिया? तू बदहवास होके वहांसे भागा क्यों? और तू फिर उसे देखके क्या करेगा? आह! यह न पूछो। यही जी चाहता है कि उसे सामने बिठालकर पूजूं। उसके क़दमोंपर बेअख़्तियार गिर पड़ूं। उसके पैरोंसे लिपट जाऊं। उसके तलवोंकी धूलको बार बार सिर चढ़ाऊं। हँसो, हँसो, तुम तो हँसोहीगे। बलासे। मुझे कुछ सुझाई नहीं देता। कोई हँसे, परवाह नहीं। आह! वह दिल ही जानता है जिसपर कुछ गुज़रता है।

डूबतेको तिनकेका सहारा और मेरे जीनेका सहारा वही सूखी हुई माला। मेरी बेचैनीको थामनेवाली। मेरे पागलपनको कुछ घड़ीतक रोकनेवाली। मेरे तड़पते हुए दिलको शान्त करनेवाली वही नाज़ुक हाथोंकी गूंथी हुई माला थी। सालभर हो गया और वह मेरे पास अब भी मौजूद है। मगर मेरे दिलकी तरह वह भी सूखी हुई है। गुड़ियोंका मेला फिर आया है। उम्मीदपर दुनिया क़ायम है और मैं इस मेलेकी उम्मीदपर क़ायम हूं। क्योंकि—

"इसी दिनकी दोआ करते हुए हैं सालभर हमको"

आज गुड़िया है। दिलके वलवलेका कुछ पूछना ही नहीं। कुछ ख़ुशी है। कुछ इन्तज़ार है। कुछ उम्मीद है। कुछ

नाउम्मेदीका डर भी है जो उठती हुई उमङ्गोंको रह रहकर एक बारगी दबा देता है। फिर बेचैनीकी लहर उठती है और उसके झोंकेमें कलेजा थर्रा जाता है और बदनभरमें मुरदनी सनसनाहट शुरू हो जाती है। वह धड़कन है कि दिलपर हाथ रखा नहीं जाता। या ईश्वर! इस उम्मीद और नाउम्मेदीके झगड़ेमें अजीब कशमकशमें जान है। गो हवास ठिकाने नहीं थे। पर इतना होशियार ज़रूर था कि मेले जानेके लिये मैंने वही कपड़े पहने जो पारसाल पहने थे। सूखे हुए चमेलीके हारको एक डिब्बेमें रखकर पाकेटमें रख लिया और दोपहरीसे मेलेको चल खड़ा हुआ।

दूकानें सजी जा रही थीं। खेल-तमाशेवाले अपना अपना करतब दिखानेके लिये सामान इकट्ठा कर रहे थे। ज़िन्दी बच्चे अपने नौकर-नौकरनियोंके संग भागोंसे जमा हो रहे थे। और मैं दोनों हाथोंसे कलेजा थामे हुए किसीकी राह देख रहा था। रास्तोंके सिरोंपर जा जाकर दूरतक नज़र दौड़ा रहा था।

अब मेला गर्म हो चला। हर एक झुण्डमें एकाध बांकी सूरत रह रहकर कहीं दिलोंपर बिजलियाँ गिराने लगी। कभी उनकी झलक दुपट्टेसे छन छनकर मस्तीकी लालियाँ छिटकाने लगी। मगर मेरी नज़र बड़ी बेचैनीके साथ और ही

किसीको ढूँढ़ रही थी। जहां कहीं शोख़ी और चुल-बुला-हट देखी, दिल तड़प उठा और कलेजा बकसे हो गया। जहां ज़रा सुरीली आवाज़ सुनाई दी, तहां फ़ौरन नज़र और पैर दोनों उसी ओर बड़ी बेताबीके साथ भीड़को चीड़ते-फाड़ते दौड़ पड़ते। मगर अफ़सोस! 'मृगतृष्णा'-की तरह हर दफ़े असलियत खुलनेपर धोखेकी सूरत नज़र आती। हार जगह जगह विक रहे हैं। पारसालवाली जगहपर भी बिक रहे हैं। मगर वह नहीं है। शाम हो चली, मेला भी छटने लगा। लोग तितिर-बितिर होने लगे और मेरा दिल बैठने लगा। एक दफ़े फिर कांपते हुए दिलके साथ एक सिरेसे दूसरे सिरे तक मेला छान डाला और आख़िरमें हाय! कारके उसी जगह जहां पारसाल माला ख़रीदी थी बेसुध खड़ा हो गया और मेरी आँखोंसे धारा बह चली।

मैं नहीं कह सकता कि ऐसी हालतमें मैं कबतक वहां खड़ा रहा। मेला ख़तम हो गया। सब लोग अपने अपने घर चले गये। देवीजीके मन्दिरमें अलबत्ता एकाध आदमी अब भी मालूम होते थे। बाकी हर जगह सन्नाटा छाया हुआ था। चांदनी आसमानपर ख़ूब साफ छिटकी हुई थी। मेरे कानोंमें एकायक कुछ भनक पड़ी। और मैंने चौंकके आंखें खोल दीं। किसीने मुझसे फिर कहा—

"लो तुम भी देवीजीको जाकर माला चढ़ा दो।" और यह कहकर मेरे हाथमें एक नहीं, दो नहीं, बल्कि गड्डकी गड्ड मालायें, जितनी उसके पास थीं, उसने सब दे दीं।

मैं हकाबका मुंह ताकने लगा। और······यकायक दिल उछल पड़ा। चेहरा दमक उठा। सांस उखड़ गई और बदन-भरमें कँपकँपी समा गई। 'आज मिले मोरे कृष्ण कन्हाई आज मिले' वही हैं वही, जिनको ढूँढ़ते ढूँढ़ते मैं मर मिटा था। ज़बान तालूसे लग गई और मैंने कांपते हुए हाथोंसे सब मालायें उन्हींके गलेमें डाल दीं।

वह—अरे! यह क्या किया?

मैं—तुम्हींने तो कहा था कि देवीजीको माला चढ़ा दो।

वह—वाह! वाह! देवीजी तो वह हैं।

मैं—मगर जिनको पूजता हूं वह तो यही हैं।

वह—लो रहने दो—। बड़े वह हैं न। लौटाना था तो सीधी तरह लौटाल देते। मैं तो गूंथते गूंथते थक गई—

मैं—लौटालनेकी भली कही। हां, अलबत्ता एक चीज़ तुम्हारी मेरे पास है। कहो तो उसे लौटा दूं।

यह कहकर मैंने डिब्बेसे वह पारसालवाली माला निकालके उसके हाथमें दे दी। उसे देखते ही वह मुस्कुराई और एक अजीब अन्दाज़से मेरी तरफ़ देखा और फिर अपने गलेके हमेलसे बिचला दाना तोड़कर बोली।

वह—लो, तुम भी अपना रुपया ले लो।

यह कहकर उसने मुझे वह हुबेलका दाना दिया।

वह बेशक एक कोढ़ेदार रुपया था जिसे देखते ही मैं झेंपसा गया। चाहा कि फ़ौरन उसके पैरोंपर गिर पड़ूं और क़दमोंको चूम लूं। मगर किसी न किसी तरह अपनेको सम्हालकर मैंने लड़खड़ाती हुई ज़बानसे कहा।

मैं—मगर मेरे रुपयेमें कोढ़ा न था।

वह—तो मेरी माला भी सूखी हुई न थी।

आह! फिर क्या था। मुझसे न रहा गया। बेअख़्तियार उसको छातीसे लगाकर मैंने उसका मुंह चूम लिया।

झूठ-मूठ

"बज़्मे शोरामें शेरख़्वानी छोड़ी,
बुलबुलके चमनमें हम ज़बानी छोड़ी।
जबसे अय दिले ज़िन्दा तूने हमको छोड़ा,
हमने भी तेरी रामकहानी छोड़ी॥"

वाह भाई दिल! हो बड़े निमकहराम! बीरबलके नज़दीक तो दामाद ही निमकहराम होते हैं। मगर सच पूछो तो भई तुम्हारा नम्बर सबसे बढ़ा चढ़ा है। जिस घरमें रहो उसीमें आग लगाओ। यह निराली पालिसी (Policy) यार तुम्हारी ही मैंने देखी। जिसकी कमबख़्ती आवे वह तुम्हारी बात सुने। जिसे अपनी इज़्ज़तसे हाथ धोना हो वह तुम्हारी रायपर चले।

बहुत दिनोंतक तुमने मुझे अपने फन्देमें फँसा रखा था। उल्लू बनानेमें तुमने कोई क़सर उठा नहीं रखी थी। तुम्हारे ही फेरमें पड़कर मैंने घोरसे घोर पाप किया। चोरी नहीं, बदमाशी नहीं! तो क्या? झूठ बोलना। जी हां, बेहद झूठ

बोला हूं। बेसर व पैरका झूठ बोलता रहा हूं और बलिहारी दुनियांकी अक्लपर। जिसने थू थू करनेके बजाय ईश्वर-वाक्यकी तरह उनकी क़द्र की। यहां तक कि मेरे झूठको साहित्यमें सरताज बना दिया। फिर तो धीरे धीरे मैंने झूठ बोलनेमें यह कमाल हासिल किया कि आज मैं "कविकुल-शिरोमणि" "कविश्रेष्ठ" प्रभृति अनेक उपाधियां प्राप्त कर नम्बरी झूठ बोलनेवाला हो गया हूं।

यह मालूम नहीं कि माशूक़ किस जानवरका नाम है। और ईश्वर अब भी झूठ न बुलवाये तो मैं यह कह सकता हूं कि, मैं इतना भी नहीं जानता कि यह कम्बख़्त जानवार है या बेजान? स्त्रीलिङ्ग है या पुलिङ्ग। जानूं कैसे? कभी मुठभेड़ हुई हो तब तो? मगर वाह भाई दिल! तुम्हारे चरकेमें आकर हज़ारों सफ़े स्याह सफ़ेद कर डाले। कोनेमें बैठा बैठा हूर, परी, गन्धर्व, किन्नर, देवी, इन पांचों मसालोंको कूट छानकर एक नई पुड़िया तैयार की और इस पचमेल धर्म मसालेका नाम "माशूक" रखा। फिर ऐसे माशूकसे जितनी चाहिये उतनी हाथापाई कर लीजिये। खोपड़ी और नाक दोनों सलामत रहेंगी। क्योंकि इसकी नस्लका ठीक पता ही नहीं। बदनामी हो तो किसकी? बुरा मानें तो कौन?

नागिन मैंने आजतक देखी नहीं है ! अगर कभी देख भी लूं तो दावेसे कह सकता हूं कि चीख़ मारकर कोसों भागूं । मगर मैंने बड़े शौक़ व प्यारसे अपने माशूक़की खोपड़ीपर लटोंकी जगह झुण्डके झुण्ड नागिन लटका दी है । नरगिस, नरगिस मैं हरगिज़ पहचानता नहीं । मगर यह कहते ज़रा भी नहीं हिचकिचाता कि मेरे माशूक़को दोनों आंखें नरगिससी हैं तो क़द सुर्रोकी तरह । एक दफ़ा मेरे एक दोस्तने मुझे एक सर्वोका पेड़ दिखाया, तब मुझे मालूम हुआ कि अपने माशूक़को चूमनेके लिये डेढ़ सौ फ़ीटकी सीढ़ी दरकार है ।

मगर वाह री दिलकी ढिठाई ! ढिठाई कहूं या झुठाई कहूं ? क्योंकि तूने ऐसे माशूक़ोंसे कितनी ज़बरदस्त लगावट दिखाई है कि घरेलू आशिक़ माशूक़ अपना अपना काला मुंह कर इस हिन्दुस्तानसे ऐसे दुम दबाकर भागे हैं कि इश्क़ बेचारा सर पीटता फिरता है ! मगर इन दोनोंको गर्द तक कहीं नहीं मिलती ।

अब लगावटकी असलियतको न पूछिये । हृदयेश्वरी, प्राणेश्वरी, प्राणप्यारी, इत्यादि प्रेमके पीपोंकी "आह ! ओह उफ़ ! हाय दइया !" ऐसे लफ़्ज़ोंको ताबड़तोड़ मददसे इस तेज़ीके साथ अपने माशूक़पर उंडेल दिया कि दुनियाको इतना

मौक़ा भी न मिला कि उन पीपोंमें देखे कि कुछ भाव भी है, या ढोलकी तरह बिलकुल पोल है।

'सत्य' और 'सतीत्व' यही कुल दो रत्न मुझे शुद्ध स्वदेशी मालूम होते हैं। मगर राजा हरिश्चन्द्रको क्या कहूं कि *मर्दोंका हिस्सा अपने साथ ऐसा समेट ले गये कि अब सच* बोलना, बेवकूफ़ी, दोष और अपराध गिना जाने लगा। ईश्वर जाने इस वजहसे या स्वदेशी होनेके कारण। स्त्रियोंके हिस्सेमें अलबत्ता कुछ तलछट बाक़ी है। नहीं, कहिये तो कह दूं कि अभी तक कुल वैसा ही है। मेरा क्या? झूठका फ़ैशन तो है ही। इसी झूठकी बदौलत आज मैं सरताज गिना जा रहा हूं, और दुनियामें इतना आदर पा रहा हूं। क्योंकि दुनियाको देवलोककी तरह दिखाता हूं। आदमियोंको आदमी नहीं, बल्कि देवताओंके सांचेमें ढालता हूं। स्त्रियोंको देवियोंसे बढ़कर बताता हूं! मैं दुनियाकी खुशामद करता हूं और वह मेरी ख़ुशामद करती है। वह मेरी बातोंपर अपनेको भूली हुई है और मैं उसकी बातोंपर अहङ्कारी हो रहा हूं। देखिये दोनोंकी आंखें कब खुलती हैं।

[२]

"उन्हें बेचैन करनेकी कोई तदबीर हो जाती",

मैं कवि हूं। बल्कि कविकुल-शिरोमणि हूं। मैंने प्रेमकी

धारा ऐसी बहाई है कि संसारमें बाढ़ आ गई। यहांतक कि लोग ऊबने डूबने लगे। मगर क़िस्मतकी बलिहारी कि मैं ख़ुद उसकी एक बूंदके लिये तरस रहा हूं। प्रेम पिपासासे मेरा तालू सूख रहा है। मैंने दुनियाके ज़ख्मोंपर पट्टी बांधनेके लिये भावनाओंकी धज्जियोंकी धज्जियां उड़ाकर फेंक दीं। मगर ख़ुद अपने दिलके ज़ख्मको बांधनेके लिये उसका एक धागा भी नहीं पाता। मेरी मीठी ज़बानपर जगत मोहित हो रहा है, मगर जिसको मैं मोहित करना चाहता हूं उसको मोहित करनेमें मेरी रसीली ज़बान काम नहीं देती।

मेरे काव्यकी प्रिया अपने प्रेमीके नयनोंसे नयन मिलाकर घण्टों उसे रसीली चितवनका मज़ा चखाती है। मगर मेरी घरेलू प्रिया मुझे आंख उठाकर देखती भी नहीं। वह अपने प्रेमीके गलेमें बाहें डालकर खूब मोठी मीठी प्रेमभरी बातें करती है। बात बातमें 'प्राणनाथ' 'जीवनमूल' इत्यादि प्यारे शब्दोंकी झड़ी बांध देती है। मगर वह मुझसे सीधे मुंह बोलतीतक भी नहीं! वह अपने प्रेमीके मुखसे 'प्यारी' 'प्रियतमे' 'प्राण-प्यारी' 'हृदयेश्वरी' सुनकर मारे आनन्दके बावलीसी हो जाती है। मगर वह इनको सुनते ही भिड़ककर मुंह फेर लेती है। और रूठकर चल देती है। वह अपने प्रेमीके वियोगमें घुल घुलकर जान देती है और विरहसे व्याकुल हो

अकसर विष खा लेती है। मगर यह मेरी ग़ैरहाज़रीमें विष तो नहीं खाती। हां, खाना अलबत्ता दोनों वक्त खूब खाती है। और व्याकुल होनेके बजाए दबाव और रोक-टोक उठ जानेसे बड़ी चहल-पहलमें दिन बिताती है।

इन बातोंमें तो मेरे काव्यकी प्रिया हज़ार गुनी अच्छी है। कवियोंके बनाये हुए अनोखे क़ायदोंके मुताबिक़ अपने प्रेमीको प्यार करती है। ज़हर खाकर अगर जान देती है तो कुछ परवाह नहीं अपना प्रेम तो यों प्रगट कर देती है। प्रकृतिके तमाम क़ायदे अगर भङ्ग हो जावें तो हो जावें बलासे। मगर माशूक़ियत तो निबाहती है। माशूक़ वही जो कवियोंकी कल्पनाके विरुद्ध न चले।

मेरे काव्यकी प्रिया चित्तको हर तरहसे प्रसन्न करती है ज़रूर, मगर दिलकी जलन तो फिर भी शान्त नहीं होती। मन-मोदक होते तो हैं बड़े ही मीठे, मगर उससे भूख बुझती नहीं, बल्कि बढ़ती ही जाती है। शब्दोंके आडम्बरोंकी बनी हुई प्रिया, भला कहांतक दिलको ख्वाहिशको पूरा कर सकती है। दिमाग़की पुतली दिमाग़हीको खुश करना जानती है। उसे दिलसे क्या प्रयोजन! तो फिर काव्यकी प्रियासे क्योंकर जी भरे!

रह गयी शरीरधारी घरेलू प्रिया, यह मुझ सरीखे

कविका न दिमाग़ ही ख़ुश कर सकती है और न दिल ही ख़ुश कर सकती है। क्योंकि कहां में "बंगाली प्रेमी" हज़ारों काव्यकी प्रियाओंसे हाथापाई किये हुए! और कहां यह अनाड़ी घरेलू प्रिया! प्रेम क्योंकर हो?

दिल इससे अपनी लगावट करनेको तैयार भी हो तो दिमाग़ उसे कब इसके लिये तैयार होने देता है! दिमाग़ तो उसे "फूहड़, गँवार, कम पढ़ी हुई, भावनारहित, बेवक़ूफ़, प्रेमके अयोग्य" बनाकर दिलको बहका देता है। अगर दिमाग़ किसी सूरतसे राज़ी भी हो जावे तो प्रेम इस लगावटको नहीं अपनाता। क्योंकि जिस लगावटमें दम न निकले, बे-मौत मौत न आवे, बदनामीका टोकरा लिये कुत्तोंकी तरह गली गली मारे न फिरें, वह प्रेमी ही नहीं।

प्रेम, तुम्हारा नाम प्रेम किस अक्लमन्दने रखा है? आँखोंके अन्धे और नाम नयनसुख! नाम इतना प्यारा और असलियत इतनी खोटी! जिसको मैं प्यार करूं उसीका बुरा ताकूं! उसको चैनसे सोते न देख सकूं? उसको हँसी ख़ुशीसे मज़ेमें दिन काटते देखकर जल मरूं? ईश्वरसे दिन रात यही प्रार्थना करूं कि वह भी मेरी तरह तड़पे! वह भी बेचैन रहे! वह भी हरदम करवटें बदलती रहे? ठंडी आहें भरती रहे ताकि मेरे दिलको तस्कीन हो। वाह! वाह! मैं

अच्छा मुहब्बती हूं जो दूसरेको तड़पाकर अपना कलेजा ठंढा करना चाहता हूं! और दूसरा भी कौन? वह, जिसको मैं जानसे प्यार करता हूं। जिसके लिये मैं प्राणतक दे देनेका दावा करता हूं। जिसका मैं प्रेमी कहलानेका दम भरता हूं। झूठ! झूठ!! सरासर झूठ!!! मैं उसका प्रेमी हूं या जानी दुश्मन? बल्कि इससे भी अधिक। क्योंकि दुश्मन तो खुल्लमखुल्ला दुश्मनी करता है। और मैं प्रेमकी आड़में दुश्मनी करता हूं। इसलिये अपनेको प्रेमी कहूं या दग़ाबाज़ दुश्मन कहूं? ख़ैर! मैं कुछ भी हूं पर इतना जानता हूं कि जबतक कोई जले, मरे, तड़पे या बेचैन न हो तबतक मेरा प्रेमी दिल ख़ुश कदापि न होगा। इसकी ख़ातिर अगर किसीको तड़पाऊं तो क्योंकर तड़पाऊं? रुलाऊं तो क्योंकर रुलाऊं, यह बात समझमें नहीं आती।

ओ घरेलू प्रिया! अगर एक दिनके लिये भी तू बेचैन हो जाती, जिस तरहसे मैं चाहता हूं उस तरहसे तू मेरे लिये तड़पती, तू अपनी ज़बानसे मुझे एक-सिर्फ़ एक ही-दफे प्राणनाथ या प्राणप्यारे कहकर मुझसे लिपट जाती तो मैं अपनी लाखों काव्यकी नायकाओंको तेरी एड़ी चोटीपर न्योछावर कर देता। ओ प्रेम! मदद कर! ओ कवित्व शक्ति, मदद कर! उनके चैन व आरामको छीननेमें मदद कर! उनकी सुखदायक

लापरवाहीको बेचैनीको आगमें जला देनेमें मदद कर! मुझ अनोखे प्रेमीकी मदद कर! मेरे स्वार्थी और चाण्डाल हृदयकी मदद कर!

(२)

"ख़्वाब था जो कुछ कि देखा जो सुना अफ़साना था।"

बस! अहंकार बस! मेरी आंखें खुल गईं। मेरी असलियत मालूम हो गई। तूनेही मुझे बहकाकर आस्मानपर चढ़ा दिया था। उस वक़्त ज़मीनपर पैर रखना अपनी शानके खिलाफ़ समझता था। मगर जब घमण्डका नशा उतर गया तब मैंने अपनेको, ज़मीन कौन कहे, गन्दीसी गन्दी खाईमें पड़ा हुआ पाया। मैं अपनेको इंगला प्रेमी समझता था। मगर जब नेचरके अखाड़ेमें शरीरधारी माशूक़ाका सामना हुआ तब मेरे प्रेमके पेतरे भूल गये। वह दांवपेंच जिनके बलपर मैं अपनेको भूला हुआ था इस जगह एक भी काम नहीं आये और यहां मैंने अपनेको अनाड़ी बल्कि अनाड़ीसे बत्तर एकदम निकम्मा पाया। बुलबुल अपने उड़नेकी ताक़तसे आगे पृथ्वी-पर चलनेवाले किसी जीव जन्तुको कुछ समझता न था। मगर जब पर बंध गये तब मालूम हुआ कि ज़मीनपर चार क़दम चलना भी दूभर है। तो फिर भला किसीका मुक़ाबला किस बिरतेपर हो सके?

झूठ-मूठ

काव्यकी नायका मेरे इच्छानुसार कठपुतलीकी तरह काम करती थी। क्योंकि उसकी इच्छा अपनी ही इच्छा थी। उसके ख़्यालात अपने ही ख़्यालात थे। उसके भाव अपने ही भाव थे। सच तो यह है कि वह शीशेमें मेरे ही दिलकी परछाही थी। मगर मेरी घरेलू नायका मेरी नहीं नेचरकी तस्वीर है। मैं आस्मानपर उड़नेवाला बुलबुल हूं और वह ज़मीनपर चलनेवाला एक जीव है। मेरा दिल और है। उसका दिल और है। इसीलिये मैं चाहता हूं कुछ और, और हो जाता है कुछका कुछ। मैं करता हूं प्रेमकी बातें और वह झिड़कियां बताती है। मैं प्रेमाग्निसे व्याकुल हो जब रोने लगता हूं तो वह मुंह चिढ़ाती है और मेरी हंसी उड़ाती है। मैं ज्यों ज्यों उसको अपने प्रेमके बन्धनमें बांधना चाहता हूं त्यों त्यों वह लापरवाही दिखाती है और यों सरककर अलग हो जाती है।

वाह री! कवित्वशक्ति! तुझसे कुछ भी न हुआ। तुझसे मामूली स्त्रीका दिल न टटोला गया। उसके भावोंका एक भी तार न छूआ गया। टटोलना और छूना तो अलग रहा, वहांतक तेरी पैठ भी न हुई। तेरा कुछ भी उसपर ज़ोर न चला। न तू उसे तड़पा ही सकी और न उसे अपने बसमें ही कर सकी। यह सब तेरी डींग क्या हुई? जा, जन्मकी झूठी तू हमेशा ही झूठके फेरमें डांवाडोल रह। तुझे सचाईका मुंह देखना नसीब न हो।

मेरी हज़ार कोशिशोंपर भी मेरी स्त्रीके चित्तपर कुछ असर न हुआ। उसके दिलमें प्रेमकी चिनगारी ज्योंकी त्यों छिपी रह गई। धधककर प्रगट न हुई। जब सब उपाय निष्फल हुए और मेरी स्त्रीकी लापरवाही दूर न हुई तो अन्तमें मैं हताश होकर बीमार पड़ गया।

वह तो बेचैन न हुई। मगर मैं बेचैन होने लगा। ज्यों ज्यों मुझे वह ख़्याल सताने लगा—कि जब मेरी तरह दुनियांकी भी एक दिन आंखें खुलेंगी तो मेरे काव्यकी क्या गति होगी और मेरी क्या गति होगी· ·त्यों त्यों मेरी परेशानी और बढ़ने लगी। इसी उधेड़-बुनमें मेरी हालत दिन बदिन बिगड़ती ही गई।

कई हफ़्ते हो गये। बुख़ारने एक पलके लिये मेरा अबतक पीछा न छोड़ा। तीमारदारोंके मुंहपर अब हवाइयां उड़ रही थीं। दिनमें उस रोज़ कई एक दफ़े डाक्टर साहब आ चुके थे। और हर दफ़े नुस्ख़े बदले भी गये। आख़िरी दफ़ा डाक्टरके चेहरेपर संजीदगी ज़्यादा थी। यह नयी और अनोखी बात मेरे दिलमें खटक रही थी। मगर मेरी समझमें कुछ नहीं आता था। सब चुप थे। मेरी स्त्री भी सबकी तरह चुप थी। मगर मैं बक रहा था। बुख़ारहीसे बक रहा था। लोग मेरी तरफ़से दूसरी तरफ़ निगाहें फेर लेते थे। मेरी स्त्री भी मुंह फेरे खड़ी

हुई थी। सब वह रहकर ठंढी सांसें भर रहे थे और आपसमें एक दूसरेका मुंह ताकते थे। मगर वह नीची निगाहें किये ज़मीनको देख रही थी। धीरे धीरे एक एक करके सब बाहर चले जाते थे। और उनके पीछे मेरी स्त्री भी बाहर चली जाती थी। बाहर कुछ खलबलीसी मालूम होती थी और कभी डाक्टरको जल्दी बुलानेकी ताकीद सुनाई देती थी।

रात हो गई। और मेरा बकना वैसे ही जारी था। लोग मुझे चुपानेकी सैकड़ों कोशिशें कर रहे थे, मगर मेरा बकना बन्द नहीं होता था। बकते बकते मैं थकता गया और अन्तमें बेहोशी आ गई। रात आधीसे ज़्यादा जा चुकी थी। मैंने स्वप्नमें देखा कि मेरा बसा-बसाया काव्यसंसार उजड़ रहा है, उस संसारके चरित्र सब नष्ट और भ्रष्ट होते जाते हैं, बड़ा कोलाहल मचा हुआ है, सब प्रकृतिकी दोहाई दे रहे हैं, सभी प्रकृतिके पैरोंपर गिर गिरकर दया करनेके लिये चिल्ला रहे हैं, उस संसारको नष्ट न करनेके लिये प्रार्थना कर रहे हैं, मगर निर्दयी प्रकृतिका दिल नहीं पिघलता, वह किसीकी बात नहीं सुनती, और उस सुन्दर और विचित्र संसारको ढाहती चली जाती है, यह देख मैं भी प्रकृतिकी दोहाई मचाने लगा, इसपर उसने मुड़कर मेरी तरफ़ देखा। अयँ! यह तो मेरी स्त्री है। मेरी स्त्री प्रकृतिके रूपमें है या प्रकृति मेरी स्त्रीके रूपमें है? क्योंकि

मेरे काव्यसंसारको उजाड़ रही है, और जिसको यहांके नाविक 'प्रकृति' कहकर दया करनेकी प्रार्थना कर रहे हैं वह तो साक्षात मेरी स्त्री मालूम होती है। यह देखते ही मैं उसकी तरफ़ लपका और जैसे ही मैंने उसका हाथ पकड़ना चाहा, वह लोप हो गई और मेरा काव्यसंसार गायब हो गया। मेरी आंखें खुल गईं और मेरे बदनसे बेतरह पसीना छूटने लगा।

आंख खुलते ही मेरी नज़र अपनी स्त्रीपर पड़ी। वह मेरे सिरहाने बैठी हुई मुझे इकटक निगाहोंसे देख रही थी। उसकी आंखोंसे आंसुओंकी धारा बह रही थी, उसके आंसूकी कई बूंदें मेरे गालोंपर गिरी थीं, वह उनको धीरे धीरे अपने आंचलसे पोंछ रही थी, सब सो रहे थे, दवा देनेवाली दाया भी सामने घड़ी रखे ऊंघ गई थी।

मैंने कुछ कहना चाहा, मगर मुंह न खुला, हाथ हिलाना चाहा, मगर हाथ न हिले। इस कशमकशमें मेरे दिलके सोने हुए भाव सब चौंक उठे, दिलके धड़कनेके साथ पसीना भी खूब ज़ोरोंके साथ छूटने लगा, अब मेरी तबीयत यकायक हलकी हो गई, मगर सुस्ती ज़्यादे मालूम होने लगी, और मैं सो गया।

सुबहको जब मैं उठा, बुख़ार उतर गया था, सब लोग मेरी हालतको देखकर ख़ुश हो रहे थे। थोड़ी देर बाद डाक्टर

नोंक-झोंक

इसने फिर मुस्कुरा दिया और शर्माकर कहा—"झूठमूठ" (पृ० १००)

साहब आए, उन्होंने भी खुशीसे बीमारीका नुस्खा बदलकर ताक़तका नुस्खा लिखा। दोपहरको मैं गर्म पानीसे नहलाया गया और मेरे कपड़े बदले गये। घरवाले ख़ुश ख़ुश सब अपने कामधन्धेमें लग गये। मेरी स्त्री मुझे दवा पिलानेके लिये आई। उसका चेहरा दमक रहा था और ओंठ मुस्कुरा रहे थे। आज दवाके साथ उसने एक पान भी दिया। मैंने पान ले लिया और उसका हाथ पकड़कर पूछा कि—

'तुम रातको रोती क्यों थी?"

वह झेंप गई और मुस्कुराकर उसने निगाह नीची कर ली। मैंने फिर पूछा कि—

"बोलो तुम रातको रोती क्यों थी?"

उसने फिर मुस्कुरा दिया और शर्माकर कहा—"झूठमूठ।"

यह सुनते ही मैं उछल पड़ा। न जाने इस नन्हेंसे शब्दने कौनसा मन्त्र मेरे दिलमें फूंक दिया कि दिलके तमाम अर-मान पूरे हो गये। मुझे इस शब्दसे जो मज़ा मिला वह बयान नहीं हो सकता। मैं आपेसे बाहर हो गया और इसपर मैंने अपना सारा काव्यसंसार न्योछावर कर दिया।

ओ प्रेम! तेरी खोजमें मैं कवितारूपी आस्मानपर बरा-बर उड़ता रहा। वहां तू मुझे इस ख़ुशी और मज़ेके साथ न

मिला जिस खूबीके साथ तू इस छोटे-मोटे 'झूठमूठ' के शब्दमें मिला है। बेशक इसके आगे मेरा काव्यसंसार सब क्षुद्र है। अब भी मैं कभी कभी दिल्लगीमें अपनी स्त्रीसे पूछता हूं कि 'तू उस दिन क्यों रोती थी' तो वह मुस्कुराकर यही कहती है कि—

"झूठमूठ"

'गये थे हम भी काबेको मगर कूये बुतां होकर।
खुदाकी शान तो देखो कहां पहुंचे कहां होकर॥